शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति

[वर्धा-शिक्षण-पद्धति पर गान्धीजी के विचार]

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ
सेवाग्राम-वर्धा

पहला संस्करण — दो हजार — दिसम्बर १९३७
दूसरा संस्करण — (संशोधित और परिवर्द्धित)
— दो हजार १९४०
तीसरा संस्करण दो हजार — अप्रैल १९४९
चौथा संस्करण दो हजार — मई १९५३

मूल्य— एक रुपया

प्रकाशक— श्री आर्यनायकम्, मन्त्री—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ,
सेवाग्राम, वर्धा (मध्यप्रदेश)
मुद्रक— गुरुराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

निवेदन

"शिक्षा मे अहिंसक क्राति" तीसरी बार छप रही है। किताब की माग बहुत हो रही थी इसलिये इसे जल्द छपवाना पड़ा। इस बार इस किताब मे से पाठ्यक्रम का वह हिस्सा निकाल दिया गया है जिसमे हमारे तजुर्बे और अनुभव के आधार पर अब काफी सुधार किया गया है। इनके सिवा किताब में और कोई तब्दीली नही की गई है।

नया पाठ्यक्रम अलग छपवाया जा रहा है।

आर्यनायकम्
मंत्री,
हिन्दुस्तानी तालीमी संघ

सेवाग्राम (वर्धा)
ता २२-४-'४९

चौथा संस्करण

"शिक्षा में अहिंसक क्राति" के इस चौथे सस्करण मे पिछले सस्करण की अपेक्षा कोई परिवर्तन नही किये गये है। नई तालीम के प्रारम्भ और इसकी मूल कल्पना को समझने के लिये उत्सुक पाठको के लिये यह पुस्तक बहुत सहायक है। विशेषत: नई तालीम की ट्रेनिग पाने वाले शिक्षकों ने इसकी बहुत मांग की है।

इस क्रातिकारी शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रश्नों का उत्तर और शंकाओं का समाधान सन् १९३७-३९ मे स्वयं गांधीजी ने "हरिजन" पत्र मे किया है। किन्तु आज भी कभी-कभी नये लोग वे ही प्रश्न और शंकायें प्रस्तुत करते हैं। उनसे हमारी प्रार्थना है, कि इस पुस्तक को अेक बार पूरी पढें, इसका मनन करें, और जहां-जहा सच्चे रूप मे नई तालीम का काम चल रहा है, वहां जाकर प्रत्यक्ष सब बातों को देखें, और समझें। इस तरह उन्हें इस क्रातिकारी शिक्षा की वास्तविकता का अनुभव हो सकेगा।

१५-५-'५३

– प्रकाशक

प्रकाशक का निवेदन

[दूसरे संस्करण के लिये]

'शिक्षा में अहिंसक क्राति' का यह दूसरा संस्करण है। इस संस्करण में गान्धीजी का विचार-सग्रह उससे आगे के लेख जोड कर बढाया गया है और साथ-साथ वर्धा-शिक्षा-परिषद का कार्य-विवरण कुछ सक्षिप्त करके उसके साथ जाकिर हुसैन समिति का विवरण और बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा का विस्तृत पाठचक्रम जोडा गया है। हमें आशा है कि इस पुस्तक से बुनियादी तालीम का एक पूरा चित्र पाठको को मिलेगा।

इस पुस्तक का पहला सस्करण मारवाडी शिक्षा मण्डल की ओर से प्रकाशित हुआ था। उन्होने इस पुस्तक का सब स्वत्व हिन्दुस्तानी तालीमी सघ को समर्पण कर दिया। इसके लिये मै यहा तालीमी सघ की ओर से हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ-साथ इस पुस्तक के पहले सस्करण के सम्पादन और प्रकाशन में महिलाश्रम वर्धा के श्री० काशीनाथजी त्रिवेदी ने शुरू से आखिर तक जो अक्लान्त परिश्रम किया उसके लिये उनका आभार मानता हूँ। इसके द्वितीय संस्करण के सम्पादन में नवभारत विद्यालय के अध्यक्ष श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल ने जो सहायता की उसके लिये भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

सेगॉव
ता. २३–२–'४०

आर्यनायकम्
मन्त्री, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ

अनुक्रमणिका

शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति

(महात्मा गांधी के विचार)

शिक्षा

(३१ जुलाअी, १९३७ के 'हरिजन' मे गाधीजी न 'क्रिटिसिज्म एन्सर्ड' यानी 'आलोचनाओ का जवाब' शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखा था। यह 'शिक्षा' शीर्षक लेख का एक अग है) :—

हमारे यहाँ शिक्षा के सवाल का हल दुर्भाग्यवश शराब की आय के बन्द हो जाने से जुड़ा हुआ है। नि सन्देह नये कर लगाने के और भी रास्ते है। अध्यापक शाह और अध्यापक खम्भाता ने यह दिखाया है कि इस गरीब देश में आज भी नये कर देने की शक्ति है। धनवानों के धन पर अभी काफी कर नहीं लगा है। दुनिया के दूसरे देशो के मुकाबले इस देश में कुछ चुने हुए व्यक्तियों का, स्वयं बहुत ज्यादा धन बटोर लेना, हिन्दुस्तान के मानव-समाज का अपराध करना है। इसलिए एक निश्चित सीमा से अधिक की सम्पत्ति पर कितना ही कर क्यो न लगाया जाय, वह कभी हद से ज्यादा नही कहा जा सकता। मैंने सुना है कि इंग्लैण्ड में एक निश्चित आमदनी से अधिक की आमदनी पर ७० फीसदी तक कर वसूल किया जाता है। फिर, क्यो न हिन्दुस्तान इससे भी ज्यादा कर लगाये ? किसी आदमी के मरने पर उसके वारिस को जो विरासत मिलती है, उसपर यह कर क्यों न लगाया जाय ? बालिग हो जाने पर भी जब लखपतियो के लडको को अपने पिता की सम्पत्ति उत्तराधिकार मे मिलती है, तो इस सम्पत्ति के कारण ही उनको नुकसान पहुँचता है। और राष्ट्र की तो इससे दुगुनी हानि

होती है। क्योकि अगर सच पूछा जाय तो इस सम्पत्ति पर राष्ट्र का ही अधिकार होना चाहिए। सिवा इसके जो इस सम्पत्ति को विरासत मे पाते है, वे इसके बोझ के नीचे इस तरह दब जाते है, कि उनकी शक्तियो का पूरा-पूरा विकास नही हो पाता। इससे भी राष्ट्र की उतनी ही हानि होती है। मेरी दलील को इस हकीकत से कोअी नुकसान नही पहुँचता कि प्रान्तीय सरकारो को इस तरह का मृत्युकर लगाने का अधिकार नही है।

लेकिन एक राष्ट्र के नाते शिक्षा मे हम इतने पिछडे हुए है, कि अगर शिक्षा-प्रचार के कार्यक्रम का आधार पैसा रहे तो इस विषय मे जनता के प्रति अपने कर्त्तव्यपालन की आशा हम कभी नही रख सकते। इसलिए रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी अपनी सारी प्रतिष्ठा को खो बैठने की जोखिम उठाकर भी मैंने यह कहने का साहस किया है कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। सच्ची शिक्षा वही है, जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणो का सर्वांगीण विकास कर सके, और उन्हे प्रकाश मे ला सके। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्तिम ध्येय है, न उससे शिक्षा का आरम्भ ही होता है। वह तो स्त्री-पुरुषो को शिक्षित बनाने के अनेक साधनो मे एक साधन मात्र है। अपने आपमे साक्षरता कोअी शिक्षा नही है। इसलिए मै तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर, अर्थात् जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षण से उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूँगा। इस तरीके से हरएक पाठशाला स्वावलम्बी बन सकती है। शर्त सिर्फ यह है कि इन पाठशालाओं में तैयार होनेवाले माल को सरकार खरीद लिया करे। मै मानता हूँ कि इस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का उच्च से उच्च विकास किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि जो उद्योग-धन्धे आज केवल यंत्रवत् सिखाये जाते है वे वैज्ञानिक ढग से सिखाये जायँ, यानी बच्चो को यह समझाया जाय कि कौनसी क्रिया किसलिए की जाती है। इस चीज को मै थोड़े आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूँ, क्योकि इसकी पीठ पर मेरे अनुभव का बल है। जहाँ-जहाँ मजदूरो को चर्खे पर सूत कातना सिखाया जाता है, तहाँ-तहाँ सब जगह इस तरीके से कमोबेश काम लिया गया है, खुद मैंने भी इस तरीके से चप्पल सीना और कातना सिखाया है और उसका परिणाम अच्छा हुआ है। इस तरीके मे इतिहास-भूगोल के ज्ञान का

बहिष्कार नही किया गया है । लेकिन मेरा तजरबा यह है कि बातचीत के जरिये जबानी जानकारी देकर ही ये विषय अच्छी-से-अच्छी तरह सिखाये जा सकते है। वाचन लेखन की अपेक्षा इस श्रवण-पद्धति से दस गुना ज्यादा ज्ञान दिया जा सकता है। जब लड़के-लड़की भले-बुरे का भेद समझने लगे और उनकी रुचि का थोड़ा विकास हो जाय, तभी उन्हे लिखना-पढना सिखाना चाहिए। यह सूचना मौजूदा शिक्षा प्रणाली मे क्रांतिकारी परिवर्तनो की सूचक है, लेकिन इसके कारण मेहनत बहुत ही बच जाती है, और जिस चीज को सीखने में विद्यार्थी को बरसो बीत जाते है, उसे इस तरीके से वह एक साल मे सीख सकता है। अिसके कारण सब तरह की बचत होती है। और इसमे कोई शक नही कि दस्तकारी के साथ-साथ विद्यार्थी गणित भी अवश्य ही सीखेगा।

प्राथमिक शिक्षा को मै सबसे ज्यादा महत्व देता हूँ। मेरे विचार मे, यह शिक्षा अंग्रेजी को छोडकर और विषयो मे आजकल की मैट्रिक तक होनी चाहिए। अगर कॉलेज के सब ग्रेजुएट अपना पढा-लिखा एकाएक भूल जायें, और इन कुछ लाख ग्रेजुएटो की याददाश्त के यो एकाएक बेकार हो जाने से देश का जो नुकसान हो उसे एक पलडे पर रखिये, और दूसरी ओर उस नुकसान को रखिये, जो पैंतीस करोड स्त्री-पुरुषो के अज्ञानान्धकार मे घिरे रहने से आज भी हो रहा है, तो साफ मालूम होगा कि दूसरे नुकसान के सामने पहला कोई चीज नही है। देश मे निरक्षरो और अनपढों की जो सख्या बताई जाती है, उसके आँकडो से हम लाखों गाँवो मे फैले हुए घोरतम अज्ञान का पूरा अनुमान नही कर सकते।

अगर मेरा बस चले तो कॉलेज की शिक्षा को जड़-मूल से बदल दूँ, और देश की आवश्यकताओ के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दूँ। मै चाहता हूँ कि मिके-निकल और सिविल इजीनियरो के लिए उपाधि परीक्षायें रक्खी जाये, और भिन्न-भिन्न कल-कारखानो के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इन कारखानो को जितने ग्रेजुएटो की जरूरत हो उतनो को ये अपने ही खर्च से तालीम दिलाकर तैयार कर ले। उदाहरण के लिए ताता कम्पनी से यह आशा की जाय, कि जितने इजीनियरों की उसे जरूरत हो उतनो को तैयार करने के लिए वह राज्य की निगरानी में एक कॉलेज का सचालन करे। इसी तरह मिल-

मालिको के मण्डल भी आपस मे मिलकर अपनी जरूरत के ग्रेजुएटो को तैयार करने के लिए एक कॉलेज का सचालन करे। दूसरे अनेक उद्योगधन्धो के लिए भी यही किया जाय। व्यापार के लिए भी एक कॉलेज हो। इसके बाद आर्ट्स, मेडिकल और कृषि कॉलेज रह जाते है। आज कई 'आर्ट्स' कॉलेज अपने पैरों खड़े होकर चल रहे हैं। इसलिए राज्य अपनी ओर से 'आर्टस' कॉलेज चलाना छोड़ दे। मेडिकल कॉलेजो को प्रमाणित अस्पतालो के साथ जोड़ दिया जाय। चूँकि ऐसे कॉलेज धनिक-समाज में लोकप्रिय हैं, इसलिए उससे यह आशा रक्खी जाय, कि वह इनके सचालन का भार स्वेच्छा से अपने ऊपर ले ले। कृषि-कॉलेज तो अपने नाम को तभी सार्थक कर सकते है, जब वे स्वावलम्बी हो। मुझे कृषि कॉलेजो से निकले हुए अनेक ग्रेजुएटों का बड़ा कड़ुआ अनुभव हुआ है। उनका ज्ञान बहुत ही उथला और व्यावहारिक अनुभव नाम मात्र का होता है। लेकिन अगर उन्हे स्वावलम्बी और देश की जरूरते पूरी करनेवाले फार्मो पर उम्मीदवारी करनी पड़े तो डिग्री पाने के बाद, और जिनकी नौकरी करते हैं, उनके खर्च से, व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता उन्हे न रह जाय।

इसे आप निरा काल्पनिक चित्र न समझे। अगर हम अपनी मानसिक जड़ता को दूर कर सके, तो हमे तुरन्त ही पता चल जाय कि शिक्षा का जो प्रश्न आज महासभा के मंत्रियो के और फलत. स्वयं महासभा के सामने उपस्थित है, उसका यह बहुत ही उपयुक्त और व्यावहारिक हल है। कुछ समय पहले ब्रिटिश सरकार की ओर से जो घोषणाये की गई है अगर सचमुच उनका अर्थ वही है, जो हमारे कान को प्रतीत होता है, तो मंत्रियों को अपनी नीति को अमल कराने में सिविल सर्विस की संगठित कार्य-शक्ति का लाभ मिलना ही चाहिए। हर तरह के मौजी और मनस्वी गवर्नरो और वाइसरायो द्वारा निर्धारित राज्यनीति को अमल में लाने की कला सरकारी नौकरों ने सीख रक्खी है। मंत्रियों का कर्तव्य है कि वे अच्छी तरह सोच-समझ कर एक निश्चित शासन नीति तय करें, और सिविल सर्विसवाले जिनका नमक खाते है उनके प्रति वफादार रहकर उन वचनों को सच्चा करें, जो उनकी ओर से दिये गए हैं।

बाद मे शिक्षको का प्रश्न रह जाता है। इसके लिअे विद्वान् स्त्री-पुरुषों से अनिवार्य सेवा लेने का जो उपाय प्रोफेसर शाह ने सुझाया है, वह मुझे अच्छा लगा है। अैसे लोगो के लिअे यह अनिवार्य हो कि वे कुछ वर्षो तक (सम्भवत: पाँच बरस तक) जनता को उन विषयो की शिक्षा दें, जिनमें उन्होने योग्यता प्राप्त की है। इस बीच जीविका-निर्वाह के लिअे उन्हे जो वेतन दिया जाय, वह देश की आर्थिक स्थिति के अनुरूप हो। उच्च शिक्षा की सस्थाओं मे आज शिक्षक और अध्यापक बहुत अधिक वेतन की अपेक्षा रखते हैं। अब यह प्रथा मिट जानी चाहिअे। गाँवो मे इस समय जो शिक्षक काम कर रहे है, उनके बदले वहाँ दूसरे अधिक योग्य आदमी रक्खे जाने चाहिअे।

अनावश्यक भय

तीन साल मे शराब-बदी के कॉंग्रेसी कार्यक्रम की बडी तारीफ करते हुअे अेक लिबरल मित्र ने शिक्षा के बारे मे अपना भय इस प्रकार प्रकट किया है:—

"महासभा के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम से लोगों मे बेचैनी सी फैलती दिखाई देती है। उन्हे डर है कि इस नीति के कारण उच्च शिक्षा की प्रगति में रुकावट पैदा होगी। मुझे उम्मीद है कि जबतक भली-भाँति सोच-समझकर तैयार की हुई योजना न बन जाय और जनता को प्रस्तावित परिवर्तनो की सूचना काफी पहले से न दे दी जाय, तबतक जल्दी मे कोई कार्रवाई न की जायगी।"

यह भय बिलकुल अनावश्यक है। कॉंग्रेस कार्य-समिति ने अपनी कोई व्यापक नीति निर्धारित नही की है। कॉंग्रेस ने काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया, तिलक विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, और अैसी दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओ की स्थापना करने के सिवा, अैसी कोई घोषणा नही की है, जो

शिक्षा के समग्र क्षेत्र पर घटित होती हो। मैंने जो कुछ लिखा है, सो इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने की दृष्टि से लिखा है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने देश के नौजवानो को, हिन्दुस्तान की भाषाओ को, और देश की सर्वमान्य सस्कृति को जो अपार हानि पहुँचाई है, उसको मै बहुत तीव्रता के साथ अनुभव किया करता हूँ। मेरे विचार बहुत दृढ है लेकिन मै यह दावा नही करता कि सभी काग्रेस-वादियो को आमतौर पर मै अपने विचारो के अनुकूल बना सका हूँ। जो शिक्षा-शास्त्री महासभा के वातावरण से भी दूर है, और भारतीय विश्वविद्यालयो पर जिनका प्रभाव है, उनके बारे मे तो मै कह ही क्या सकता हूँ ? उनके विचारो को बदलना आसान नही है। इन मित्र को और इनके-जैसा डर रखनेवालो को विश्वास रखना चाहिअे कि श्री श्रीनिवास शास्त्री ने जो सलाह दी हे, उसे इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले सब ध्यान मे रखेगे और बिना पूरा-पूरा विचार किये और शिक्षा के मामले मे जिनकी सलाह बहुमूल्य मानी जाती हे उन सबके साथ बिना सलाह-मशविरा किये किसी भी प्रकार का महत्त्वपूर्ण निणय नही किया जायगा। मै इतना और कहूँगा कि मैंने बहुत पहले से बहुतेरे शिक्षा-शास्त्रियो के साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया है और मुझे यह कहते हुअे खुशी होती है कि जो बहुमूल्य सम्मतियाँ इधर मुझे मिली है वे आमतौर पर मेरी योजना के अनुकूल ही पडती है।

(हरिजन, २८ अगस्त, १९३७)

" शिक्षा की समस्या "

जबसे महासभा के मत्रियो ने मत्री-पद ग्रहण किये है, तबसे गाधीजी शिक्षा के बारे मे कई लोगो के सामने अपने विचार प्रकट किया करते है। अेक बार इसी सम्बन्ध में बातचीत करते हुअे उन्होंने कहा था : " नये सुधारो की सबसे बड़ी

विपरीतता यह है कि अपने बच्चो को पढाने के लिअे हमारे पास शराब की आमदनी से मिलनेवाले पैसो को छोडकर और कोई जरिया ही नही है। शिक्षा के क्षेत्र मे यह अेक गूढ पहेली ही है। लेकिन हमे इसमे हार मानने की आवश्यकता नही। इस पहेली को बूझने के लिये हमे कितना ही स्वार्थत्याग क्यो न करना पडे हम शराब को जड मूल से मिटाने के अपने आदर्श को तनिक भी नीचा नही कर सकते। हमारे लिये तो यह विचार ही, कि अगर शराब की आमदनी न हुई तो हमारे बच्चे अनपढ ही रह जायेंगे, अेक लज्जा का और खिसियाहट का विषय होना चाहिअे। लेकिन अगर अैसा ही समय आ जाये, तो यह समझकर कि शराबखोरी और निरक्षरता मे निरक्षरता कम खराब है हमे उसीको मजूर कर लेना चाहिअे। अगर हम अको के चक्कर मे न फँसे और प्रचलित विश्वास के शिकार न बने कि आज हमारे बच्चो को जिस प्रकार की शिक्षा मिलती है, वैसी शिक्षा उन्हे मिलनी ही चाहिअे तो इस प्रश्न से हमारे सामने कोई परेशानी पैदा ही क्यो हो?" शिक्षा को स्वावलम्बी और गाँव के मदरसो को गाँव की आवश्यकताओ की पूर्ति करने योग्य बनाने के लिअे जिस शिक्षा-पद्धति के विकास की जरूरत है, उसपर विचार करने के लिअे हमारे शिक्षा-शास्त्रियो को किसी जगह अेकत्र होना चाहिअे, इस बात पर गाधीजी क्यो इतना जोर देते है, उसका मतलब उनके ऊपर दिये गये उद्‌गारो से समझा जा सकता है।

अेक प्रश्नकर्त्ता ने आश्चर्य से पूछा: "तो क्या आप हाईस्कूल की शिक्षा को बन्द कर देंगे, और मैट्रिक तक की सारी शिक्षा गाँव के स्कूलो मे देंगे?"

महात्माजी ने कहा: "बेशक! आपकी हाईस्कूल की शिक्षा मे धरा ही क्या है? जिस चीज़ को लड़के अपनी मातृभाषा द्वारा दो साल मे सीख सकते है, उसीको पराई भाषा द्वारा सात साल में सीखने के लिअे बाध्य करने के सिवा वह और करती ही क्या है? यदि आप विदेशी भाषा द्वारा पढ़ने के असह्य बोझ से बच्चो को मुक्त करने का निश्चय मात्र कर ले, और उनको अपने हाथपैरों का उपयोग किसी लाभप्रद काम मे करना सिखाये, तो शिक्षा की समस्या अपने आप ही हल हो जाये। इस तरह शराब की सारी आमदनी को आप निःसकोच छोड़

सकते है। लेकिन पहले तो आपको इस दूषित आमदनी को छोड देने का निश्चय करना चाहिअे, और बाद मे इस बात का विचार करना चाहिअे कि शिक्षा के लिअे पैसे कहाँ से मिल सकते हैं। इस तरह अेक बडा कदम उठाकर आप इसे शुरू कर सकते है।"

"लेकिन क्या शराब-बन्दी की घोषणा-मात्र कर देने से शराबखोरी बन्द हो जायेगी? क्या यह नहीं हो सकता कि हमारे शराब की आमदनी को छोड देने पर भी शराबखोरी न मिटे, और मिटना तो दूर, जरा भी कम न हो?"

"शराब-बन्दी की घोषणा का अर्थ यह नहीं है कि उसके बाद आप हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाये! बल्कि आप तो हरअेक आदमी का अपने इस काम में उपयोग करेंगे। सरकारी नौकरो का दल आपके पास है ही—आबकारी इन्स्पेक्टर उनके अफसर और उनके अधीन काम करनेवाले छोटे कर्मचारियो का सारा दल आपके पास है। आप उनसे कहिये, कि शराबखोरी की पूरी-पूरी बन्दी के सिवा और किसी काम के लिअे आपको उनकी नौकरी की जरूरत नहीं है—वे इसी शर्त पर नौकर रह सकते हैं! शराब की हरअेक दूकान को आप खेल-कूद और मनोरंजन का स्थान बना सकते हैं। जिन जगहो मे शराब-खोरी के लिअे ज्यादा से ज्यादा सहूलियते हो, वहाँ आप अधिक-से-अधिक प्रयत्न कीजिये। आप मिल-मालिकों और कारखानदारो से कहिये कि वे मजदूरो के लिअे अच्छे और सुन्दर उपहारगृह कायम करें। इन उपहारगृहो मे गन्ने के रस के समान ताजगी देनेवाले पेयों का प्रबध किया जाये, खेल-कूद के साधन प्रस्तुत किये जाये, और मैजिक लैन्टर्न के प्रयोग दिखाये जाये, जिससे मजदूरो के दिल में यह खयाल पैदा हो, कि दूसरे आदमियो की तरह वे भी आदमी ही है! बिना किसी अपवाद के हरअेक आदमी को आप अपने काम में शरीक करे। देहाती स्कूलो के शिक्षक और दूसरे अफसर और कर्मचारी सभी शराब-बन्दी के प्रचारक बन जाये।"

"बहुत ठीक, लेकिन कई जगह गाँवो के पटेल और दूसरे आदमी खुद शराबियो के साथ बैठकर शराब पीते है। उनका क्या कीजियेगा?"

"आपकी पाठशाला का हरअेक विद्यार्थी शराब-बन्दी का काम करेगा। जहाँ शराब की दूकानो का स्थान मनोरजन के स्थानो ने ले लिया होगा, वहाँ वे

जायँगे; साधारण लोगो के साथ बैठकर रस का या ऐसी ही किसी ताज़गी देनेवाली चीज का एकाध प्याला पीयेंगे और इस तरह इन स्थानोकी प्रतिष्ठा बढायेंगे ।"

(कुछ ही दिन पहले मद्रास के अेक मत्री श्री रामन् मेननने एक सभा मे कहा था कि "इस महान् प्रयोग मे सारे देश को दिलचस्पी लेनी चाहिये । शराब बन्दी किसी एक आदमी का काम नही, बल्कि सारे देशका काम है ।)"

गाधीजी "आप यह सोचकर हिम्मत न हारे, कि अमेरिका में शराब-बन्दी का प्रयोग असफल हुआ है, यह याद रखिये कि जिस देश में शराब का पीना दुर्गुण नहीं माना जाता, और जहाँ आमतौर पर करोडो लोग शराब पीते हैं, उस अमेरिका मे यह प्रयोग किया गया था । हमारे देश मे तो सभी धर्म शराब को त्याज्य समझते हैं, और यहा शराब के पीनेवाले करोडो नही, बल्कि कुछ इने-गिने लोग ही है । "

इससे पता चलता है, कि गाधीजी का मन किस दिशा में काम कर रहा है । उनकी यह अिच्छा है कि दूसरे महासभावादी भी इसी दिशा में कार्य करने लगे । शराब-बन्दीके उद्योगको सफल बनानेके लिए राजाजी भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं । वे कअी सभाओ मे भाषण देते है । ऐसी एक सभा मे उन्होंने कहा था : "अगर लोगो मे मन की उदारता हो, तो उन्हें कह देना चाहिए हम शिक्षा के बिना अपना काम चला लेगे, लेकिन शराब-खोरी की जड को तो खोदकर ही रहेगे । आखिर अिस शिक्षा से फायदा ही क्या है ? शराबी शराब के नशे मे चूर रहता है, और शिक्षित शिक्षा के विलास मे मस्त; ऐसे शिक्षित आदमी किसी शराबी से अधिक संस्कारी नही समझे जा सकते ।"

(हरिजन, अगस्त १९३७)

—महादेव देसाई

क्या साक्षरता नहीं ?

इस पत्र मे शिक्षा-सम्बन्धी जो विचार मैंने प्रकट किये है, उनपर मेरे पास बहुतेरी सम्मतिया आई है। इनमे जो सबसे महत्व की है, सम्भव है, आगे चल कर उन्हे मै इस पत्र मे दे सकू। इस समय तो सिर्फ एक विद्वान पत्र-लेखक की शिकायत का जवाब देना चाहता हूँ। उनके विचार मे मैने साक्षरता की उपेक्षा करने का अपराध किया है। मने जो कुछ लिखा है, उसमे ऐसी धारणाको पुष्ट करनेवाली कोई चीज नही है। क्या मैने यह नही कहा कि जो पाठशालाये मेरी कल्पना के अनुसार चलेगी, उनमे बालको को दी जानेवाली दस्तकारी की शिक्षा के मारफत दूसरी सब प्रकार की शिक्षा भी मिलेगी ? इसमे साक्षरता का भी समावेश हो जाता है। मेरी योजना मे हाथ से चित्र बनाने या अक्षर लिखने से पहले बालक औजारो का उपयोग करना सीखेगा। आँखे जिस प्रकार ससार की दूसरी चीजो को देखती-परखती है, उसी प्रकार अक्षरो और शब्दो के चित्रो को भी देखे-परखेगी। कान वस्तुओ और वाक्यो के नाम और अर्थ को ग्रहण करते रहेगे। शिक्षा की यह पद्धति पूरी तरह स्वाभाविक होगी, बालको का मनोरजन करनेवाली होगी, और इसीलिए देश मे प्रचलित सभी शिक्षा-प्रणालियोंकी अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और सस्ती होगी। इस प्रकार मेरी पाठशाला के बालक जितनी तेजी से लिखेगे, उससे कही ज्यादा गति से वे पढेगे। और, जब वे लिखेगे तो मेरी तरह 'चीटो के पैर' न लिखेगे, बल्कि जिस तरह अपनी देखी-परखी चीजो के हूबहू चित्र बनायेगे, उसी तरह शुद्ध और सुन्दर अक्षर भी लिखेगे। यदि मेरी कल्पना की पाठशालाये कभी स्थापित हुई, तो मै दावे के साथ कहता हूँ कि वे वाचन के क्षेत्र मे सबसे आगे बढी हुई पाठशालाओ का मुकाबला कर सकेगी; और अगर लेखन के बारे मे भी सब इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हो कि वह आजकल की अधिकाश पाठशालाओ की तरह अशुद्ध

नही, बल्कि शुद्ध होना चाहिए, तो मेरी पाठशालाये इसमें भी दूसरी किसी भी पाठशाला की बराबरी कर सकेगी। सेगाँव की पाठशाला मे आज बच्चे जिस तरीके से लिखते है, वह पुराना तरीका कहा जा सकता है। मेरे विचार मे इस तरह वे जो कुछ लिखते है, उससे कागज और स्लेट का अपव्यय मात्र होता है।

पाठशालाओं में संगीत

गान्धर्व महाविद्यालय के पडित नारायण शास्त्री खरे ने बालक-बालिकाओ मे शुद्ध सगीत का प्रचार करने के काम मे अपना सारा जीवन खपा दिया है। खास तौर पर अहमदाबाद मे और आम तौर पर सारे गुजरात मे इस ओर जो जोरो की प्रगति हो रही है, उसका विवरण उन्होने मेरे पास भेजा है, और इस बात पर अपना दुःख प्रकट किया है कि शिक्षा-विभाग के अधिकारी पाठ्यक्रम में सगीत को शामिल करने की बात पर ध्यान नही दे रहे है। पण्डितजी की अनुभव-सिद्ध सम्मति है कि प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे सगीत को जगह मिलनी ही चाहिए। उनकी इस सूचना का मै हृदय से समर्थन करता हूँ। जितनी जरूरत बालक के हाथ को तालीम देने की है, उतनी ही उसके कण्ठ को सुधारने की भी है। बालको और बालिकाओ की छिपी हुई शक्तियो को प्रकट करने और उनमे शिक्षा का रस पैदा करने के लिये जरूरी है कि उन्हे कवायद, हुनर-उद्योग, चित्रकला और सगीत की शिक्षा साथ-साथ दी जाय।

मै मानता हूँ कि इसका अर्थ होता है, शिक्षा की वर्तमान पद्धति मे क्रान्ति। अगर देश के भावी नागरिको को अपने जीवन-कार्य की नीव मजबूत बनानी है, तो ये चार चीजे जरूरी हो जाती है। आप किसी भी प्राथमिक पाठशाला में जाकर देखे, आमतौर पर लडके आपको ऐसे मिलेगे, जो गन्दे होगे, अव्यवस्थित होगे, और बेसुर-बेताल मे गानेवाले होगे। इसलिए मुझे इसमे कोई शका नहीं मालूम होती कि जब प्रान्त-प्रान्त के शिक्षा-मत्री अपने यहाँ शिक्षा की नई पद्धति

का निर्माण करके उसे देश की आवश्यकताओ के अनुकूल बनायेगे, तब वे उन आवश्यक विषयो को अपने कार्यक्रम से अलग न रखेगे, जिनका मैंने ऊपर जिक्र किया है। प्राथमिक शिक्षा की मेरी योजना मे तो इन विषयो का समावेश होता ही है। जिस घडी हम अपने बच्चो के सिर से एक कठिन विदेशी भाषा को सीखने का बोझ हटा लेगे उसी घडी से इन विषयो की शिक्षा का प्रबन्ध आसान हो जायगा।

इसमे सन्देह नही कि आज हमारे पास शिक्षको का ऐसा दल नही है, जो इस नई पद्धति के अनुसार काम कर सके। लेकिन यह समस्या तो प्रत्येक नये कार्य के साथ उत्पन्न होती ही है। अगर मौजूदा शिक्षक इन सब विषयो को सीखने के लिए तैयार हो, तो उन्हे वैसा मौका दिया जाय। साथ ही यह प्रबन्ध भी किया जाय कि जो इन आवश्यक विषयो को सीख लें, उनके वेतन मे तुरन्त ही ठीक-ठीक वृद्धि कर दी जाय। प्राथमिक शिक्षा मे जिन नये विषयो का समावेश होनेवाला है, उन सबके लिए अलग-अलग शिक्षक रखने की बात तो कल्पना से बाहर की बात है। यह बिलकुल अनावश्यक है, क्योकि इससे खर्च बहुत बढ़ जायगा। हो सकता है कि प्रायमरी स्कूलो के कुछ शिक्षक इतने कम-जोर हो, कि थोडे समय मे वे इन विषयो को सीख ही न सके। लेकिन जो लडके मैट्रिक तक पढे होगे, उन्हे संगीत, चित्रकला, कवायद और हुनर-उद्योग के मूल तत्वो को सीखने मे तीन महीने से ज्यादा समय न लगाना चाहिए। जब एक बार वे इन विषयो का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर लेगे, तो फिर पढ़ाते-पढाते भी अपने इस ज्ञान मे बराबर तरक्की कर सकेगे। लेकिन इसमे शक नही कि यह काम तभी हो सकता है, जब शिक्षको मे राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अपनी योग्यता को बराबर बढाते रहने की आतुरता हो और उत्साह हो!

(हरिजन, ११ सितम्बर, १९३७)

स्वावलम्बी शिक्षा

मद्रास से डॉ० ए० लक्ष्मीपति लिखते हैं :—

"मैंने मिशनरियों द्वारा संचालित कुछ सस्थायें देखी हैं। इनमे मदरसे सिर्फ सुबह लगते हैं और शाम को विद्यार्थियो से खेती का अथवा किसी दस्तकारी का काम लिया जाता है। जैसा और जितना जिसका काम होता है, उसके अनुसार उसे मजदूरी भी दी जाती है। इस प्रकार सस्था को न्यूनाधिक परिमाण में स्वावलम्बी बनाया जाता है। विद्यार्थी जब स्कूल से पास होकर निकलते हैं, तो उन्हें इस बात की चिन्ता नही रहती, कि कहाँ जायेंगे और क्या करेंगे। क्योंकि कम-से-कम इतनी शिक्षा तो उन्हे मिल ही जाती है, कि वे अपनी गुजर-बसर के लिए कमा-खा ले। सरकारी शिक्षा-विभाग की जो पाठशालायें एक ही ढंग से और नीरस रीति से काम करती हैं, उनके मुकाबले इस तरह की पाठशालाओं का वातावरण बिलकुल ही भिन्न होता है। इन पाठशालाओ में लड़के अधिक स्वस्थ पाये जाते हैं। उनको इस बात की खुशी रहती है कि उन्होंने कुछ-न-कुछ उपयोगी काम किया है। उनके शरीर की गठन भी मजबूत होती है। खेती के मौसम मे ये पाठशालायें कुछ समय के लिए बन्द रक्खी जाती है, क्योकि उन दिनों विद्यार्थियों की सारी शक्ति का उपयोग खेती के काम में करना पडता है। शहरों मे भी जिन लडकों का रुझान व्यापार-धन्धे की तरफ हो, उनको वैसे धन्धो में लगाना चाहिए, जिससे वे अपने काम में विविधता का अनुभव कर सके। जो लड़के गरीब हों, या जो पाठशाला द्वारा अपने भोजन का प्रबन्ध करना चाहते हों, उन्हें सुबह की पढ़ाई के दरम्यान आध घंटे की छुट्टी में एक बार खाने को दिया जाना चाहिए। इस उपाय से गरीब लड़के पाठशालाओं में दौड़े-दौड़े आयेंगे और उनके माँ-बाप भी उन्हे नियमित रूप से मदरसे जाने के लिए प्रोत्साहित करते रहेंगे।

"अगर आधे दिन की पाठशाला की यह योजना मंजूर कर ली जाये, तो इन पाठशालाओं में काम करनेवाले कई शिक्षकों का उपयोग गाँव के बालिग

स्त्री-पुरुषो की साक्षरता बढाने मे किया जा सकता है, और इसके लिए अलग से कुछ खर्च करने की कोई आवश्यकता नही रहती है। मकानो का और पढाई के दूसरे सामान का भी इसी तरह उपयोग किया जा सकता है।

"मै मद्रास के शिक्षा-मत्री से मिला हूँ, और मैने उन्हे एक पत्र भी लिख कर दिया है। इस पत्र मे मैने लिखा है कि हमारी वर्तमान पीढी की गिरती हुई तन्दुरुस्ती का मुख्य कारण पाठशाला का असुविधा-जनक समय है। मेरे विचार मे, हमारे सभी मदरसो और कॉलेजो की पढाई का समय सुबह ६ से ११ तक होना चाहिए। मदरसो मे चार घटो की पढाई काफी समझी जानी चाहिए। लडके दुपहर का समय अपने घरो मे बिताये, और शाम का खेल-कूद, कसरत और कवायद वगैरा मे। कुछ लडके जीविकोपार्जन के काम मे और कुछ अपने माता-पिता की सहायता करने मे इस समय का उपयोग करे। इस तरीके से विद्यार्थी मॉ-बाप के सम्पर्क मे ज्यादा रहेगे। मै समझता हूँ, किसी भी धधे की शिक्षा के लिए अथवा परम्परागत कुशलता के विकास के लिए इस चीज की जरूरत है।

"अगर हम इस बात को मान ले कि नागरिको के शरीर की सुदृढता ही राष्ट्र की सुदृढता का आधार है, तो मेरे सुझाये हुए परिवर्तन, दीखने मे क्रातिकारी होते हुए भी, हिन्दुस्तान की रहन-सहन और यहाँ की आबोहवा के अनुकूल ठहरेगे, और अधिकाश लोग इनका स्वागत भी करेगे।"

डॉ० लक्ष्मीपति ने पाठशालाओ की पढाई का समय सिर्फ सुबह ही रखने के सम्बन्ध मे जो सूचना की है, उनके बारे मे शिक्षा-विभाग के अधिकारियो से सिफारिश करने के सिवा, मै और कुछ नही कहना चाहता। उन्होने अपने पत्र में उन सस्थाओ का जिक्र किया है जो न्यूनाधिक अश मे स्वावलम्बी है। अगर ये सस्थायें अपना कुछ खर्च या पूरा खर्च निकालना चाहती है, और विद्यार्थियो को भी समाज के लिए उपयोगी बनाना चाहती है, तो सिवा इसके वे और कुछ कर भी नही सकती। फिर भी मै देखता हूँ कि मेरी सूचना से कुछ शिक्षा-शास्त्रियों को आघात पहुँचा है। वजह इसकी यह है कि आज जो कुछ चल रहा है, उसके सिवा शिक्षा की दूसरी किसी पद्धति का उन्हे पता ही नही है। शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने का विचार ही उन्हे शिक्षा के सारे महत्व को घटानेवाला

मालूम होता है। स्वावलम्बन की सूचना मे वे केवल अर्थोपार्जन की दृष्टि को ही मुख्य समझते है। आजकल मै एक पुस्तक पढ रहा हूँ, जिसमे यहूदियो के शिक्षा विषयक एक प्रयोग का वर्णन है। इस पुस्तक मे यहूदी पाठशालाओ मे दिये जानेवाले उद्योगधधो के शिक्षण के विषय मे लेखक ने इस प्रकार लिखा है :

"इसलिए हाथ का काम करने मे वे आनन्द का अनुभव करते है, इसके साथ ही बौद्धिक काम भी होते रहते है, जिससे हाथ की यह मेहनत अखरती नहीं और चूँकि इसके साथ देशभक्ति का आदर्श भी सामने रहता है, इसलिए यह शिक्षा बहुत उदात्त बन जाती है।"

अगर हमे सुयोग्य शिक्षक मिल गये, तो वे हमारे बालको को शरीर श्रम का महत्त्व और गौरव समझायेगे। बालक शरीर-श्रम को बुद्धि के विकास का एक अविभाज्य अग और साधन मानना सीखेगे और यह समझने लगेगे कि अपनी मेहनत से अपनी पढाई का खर्च चुकाने मे देश की सेवा है। मेरी इन सब सूचनाओ का निचोड यह है कि बालको को जो दस्तकारियाँ सिखाई जायेगी, वे उनके किसी प्रकार का उत्पादक काम कराने की मशा मे नही, बल्कि उनकी बुद्धि का विकास करने के खयाल से सिखाई जायेगी। इसमे कोई शक नही कि अगर सरकार सात से चौदह बरस की उम्र के बच्चो की पढाई को अपने हाथ में ले, और उत्पादक कार्यो द्वारा उनके शरीर और मन का विकास करे, तो ये पाठशालाये अवश्य ही स्वावलम्बी बननी चाहिए। अगर ये स्वावलम्बी नही बन सकती, तो मै कहूंगा कि या तो ये पाठशालाये ही नही है, या इनमे पढानेवाले शिक्षक निरे बेवकूफ है।

मान लीजिये कि हरएक लड़का और लडकी यन्त्र की तरह नही, बल्कि दिमागी सूझ-बूझ के साथ काम करे, और किसी निष्णात मनष्य की निगरानी में सबके साथ मिलकर दस्तकारी सीखने मे दिलचस्पी दिखाये, तो अपनी पहले साल की पढ़ाई के बाद उनके इस सामूहिक श्रम की कीमत फी घटा एक आना होनी चाहिए; यानी रोज़ चार घटे के हिसाब से महीने मे २६ दिन काम करके हरएक बालक प्रति मास ६।।) रु. कमायेगा। अब सवाल सिर्फ यह है कि ऐसे लाभ-दायक श्रम मे लाखो बालको को लगाया जा सकेगा या नही? एक साल की

तालीम के बाद अगर हम अपने बालको को इस योग्य न बना सके, कि वे फी घटा एक आना के हिसाब से काम करके अपनी बनाई चीजें वाज़ार मे इस भाव से बेच सके, तो समझना चाहिए कि हमारी बुद्धि का दिवाला निकल गया ! मै जानता हूँ कि हिंदुस्तान के गाँवो मे देहाती लोग कही भी फी घंटा एक आना नही कमाते । इसकी वजह यह है कि गरीब और अमीर के बीच इस देश मे आज जो ज़मीन-आसमान का फर्क है, उसमे न तो हमें कोई विषमता मालूम होती है, और न वह हमें खटकता ही है । दूसरा कारण यह है कि शहरवाले, शायद अनजान मे, गाँवों का शोषण करने में अग्रेजी हुकूमत के साथ मिल गये है ।

(हरिजन, ११ सितम्बर, १९३७)

शरीरश्रम क्या है ?

मध्यप्रात के शिक्षा-मत्री श्री० रविशकर शुक्ल अपने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर मि० औवन और मि० डी-सिलवा के साथ अपने यहाँ के सभी शिक्षा-शास्त्रियो को लेकर पिछले हफ्ते गांधीजी से मिलने आये थे । आजकल की शिक्षा-प्रणाली मे जो क्राति गाधीजी कराया चाहते है, उसकी दिशा में प्रयोग शुरू करने से पहले वे गाधीजी से उनके विचार समझ लेना चाहते थे । गाधीजी ने उनसे कहा : "बालक राज्य से जो कुछ पाते है, उसका कुछ हिस्सा राज्य को वापस देने का तरीका उन्हे सिखाकर मै शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना चाहता हूँ । आप जिसे आज प्राथमिक और माध्यमिक यानी हाईस्कूल की शिक्षा कहते है, उन दोनों को मै जोड देना चाहता हूँ । मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि आज हाईस्कूल मे हमारे बच्चो को अग्रेजी के टूटे-फूटे ज्ञान के साथ गणित इतिहास और भूगोल के उथले ज्ञान को छोड़कर और कुछ नही मिलता । इनमें से कुछ विषयों को तो वे प्राथमिक पाठशालाओ मे मातृभाषा द्वारा सीख चुके होते है ।

आप जिन विषयो की शिक्षा आज देते है उन्हे कायम रखकर सिर्फ अंग्रेजी को पाठ्यक्रम से हटा दे, तो बालकों की सारी पढाई को ११ के बदले ७ वर्षों में पूरी कर सकते है, और जो मेहनत-मजदूरी या शरीरश्रम का काम आप उनसे लेगे, उनसे राज्य को काफी आमदनी भी हो सकती है। इस शरीरश्रम को सारी शिक्षा के केन्द्र मे रखना पडेगा। मैंने सुना है कि मि० एँबट और मि० वुड् ने गाँवो की शिक्षा के एक महत्वपूर्ण अग के रूप मे शारीरिक श्रम की उपयोगिता को स्वीकार किया है। मुझे खुशी इस बात की है कि प्रतिष्ठित शिक्षा-शास्त्री मेरी बात का समर्थन करते है। लेकिन मै नही जानता कि जिस तरह का जोर शारीरिक श्रम पर मै देता हूँ, वैसा ही वे भी देते है या नही। क्योकि मै तो कहता हूँ. मन का विकास हाथ-पैर की इस शिक्षा मे स्कूल के सग्रहालय के लिए चीजें बनाने या निकम्मे खिलौने तैयार करने का समावेश नही होता। बाजार में बिकने योग्य चीजे ही बननी चाहिए। कल-कारखानो के आरम्भकाल मे बालक चाबुक या कोडे के डर से काम करते थे, इन स्कूलो मे वे ऐसा नही करेगे। बल्कि वे इसलिए काम करेगे कि उन्हे उससे दिलचस्पी है, और उनकी बुद्धि का विकास होता है।"

मि० डी-सिलवा ने कहा: "मै इस बात को मानता हूँ कि शिक्षा सृजनात्मक कार्यों द्वारा दी जानी चाहिए; लेकिन सवाल यह है कि छोटी उम्र के सुकुमार बालक बडो के साथ कैसे होड कर सकते है?"

"बालक बडो के साथ होड़ नही करेगे। उनकी बनाई हुई चीजो को राज्य खरीद लेगा और उन्हे बाज़ार में बेचेगा। आप उन्हे ऐसी चीजें बनाना सिखाइये, जो सचमुच उपयोगी हो। उदाहरण के लिए इस चटाई को ले लीजिये। घर मे जिस काम को करते हुए उनका दिल उचाट होता है, उसीको स्कूल मे वे बुद्धि-पूर्वक करेगे। आज आप जो शिक्षा देते है, वह जब स्वावलम्बी और स्वयस्फूर्तिवाली बन जायेगी, तभी यह महा जटिल प्रश्न भी सरल हो जायेगा।"

"लेकिन बालकों को इस तरह की शिक्षा दे सकने से पहले हमें शिक्षकों की मौजूदा पीढी को मिटा देना होगा।"

"नही। इसमे सन्धिकाल के बीच की स्थिति रखनी ही नही है। आपको तो यह काम शुरू कर देना है, और इसे करते-करते नये शिक्षक भी तैयार करने है।"

इस तरह की थोडी बातचीत के बाद, गाधीजी ने इन मित्रो को सलाह दी कि वे नवभारत विद्यालय के आचार्य श्री आर्यनायकन् से, डॉ. भारतन् कुमारप्पा से, काका साहब से और दूसरे अनुभवी शिक्षा-शास्त्रियो से, जो वर्धा मे मौजूद है, मिले। इस लेख के लिखते समय वे एक व्यावहारिक योजना तैयार करने के विषय में बहुत ही उपयोगी चर्चा कर रहे है। आशा है, उनकी इस चर्चा का परिणाम कुछ ही दिनो मे हमे मालूम हो सकेगा।

इस बीच, गाधीजी शारीरिक श्रम का जो अर्थ करते है, उसपर अधिक प्रकाश डालने मे सहायक होनेवाली कुछ बाते नीचे देना चाहता हूँ। एक सज्जन कुछ वर्षो से अपने स्कूल मे हाथ-पैर की और साक्षरता की शिक्षा साथ-साथ देते रहे है; गाधीजी ने उनके नाम जो पत्र लिखा है, उसमे वह कहते है.

"इस सिद्धान्त को, कि कताई और पिंजाई आदि बौद्धिक शिक्षा के साधन होने चाहिए, आप शायद ठीक-से पचा नही पाये है। आपने उसे बौद्धिक पाठ्यक्रम के पूरक के रूप में अपनाया है। मै चाहता हूँ कि आप इन दोनो के भेद को समझ ले। जैसे: अेक बढई मुझे बढ़ईगीरी सिखाता है। मै उससे इस चीज को यत्र की तरह सीख लूँगा और फलतः कई तरह के औजारो का उपयोग करना भी सीख जाऊँगा। लेकिन उससे मेरी बुद्धि का विकास शायद ही हो सकेगा। लेकिन इसी चीज़ को जब मै किसी बढईगीरी के शास्त्र को जाननेवाले शिक्षक से सीखूँगा, तो वह बढ़ईगीरी के साथ-साथ मेरी बुद्धि का भी विकास करता चलेगा। ऐसा करते-करते मै एक होशियार बढ़ई ही नही, बल्कि इजीनियर भी बन जाऊँगा। क्योकि वह कुशल बढ़ई मुझे गणित सिखायेगा; तरह-तरह की लकड़ियो का भेद समझायेगा, कौनसी लकड़ी कहाँ से आती है, इसका पता देगा; और इस प्रकार भूगोल के साथ खती का भी थोड़ा ज्ञान करा देगा। वह मुझे अपने औजारो के चित्र बनाना भी सिखायेगा, और इस तरह प्राथमिक ज्यामिति का और गणित का ज्ञान करायेगा। हो सकता है कि आपने केवल

वाचन-लेखन द्वारा दिये जानेवाले बौद्धिक शिक्षण का हाथ-पैर के साथ मेल न मिलाया हो। मुझे कबूल करना चाहिए कि अबतक तो मैंने यही कहा कि हाथ-पैर की शिक्षा बुद्धि की शिक्षा के साथ-साथ दी जानी चाहिए और राष्ट्रीय शिक्षा मे उसका मुख्य स्थान होना चाहिए। लेकिन अब मै यह कहता हूँ कि बुद्धि के विकास का मुख्य साधन हाथ-पैर की शिक्षा होनी चाहिए। जिस कारण से मै इस निर्णय पर पहुँचा हूँ, वह यह है कि मै देख रहा हूँ कि आज हमारे बालको की बुद्धि का दुरुपयोग हो रहा है। हमारे लडको को कुछ पता ही नही चलता कि स्कूल छोडने के बाद उन्हे क्या करना होगा। सच्ची शिक्षा तो वही कही जायेगी, जो बालको की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियो को प्रकट करती, और उनका विकास करती है। यदि उन्हे ऐसी शिक्षा मिले, तो वह बेकारी के लिए बीमे का काम दे सकती है।"

(हरिजन, ११ सितम्बर १९३७)

महादेव देसाई

शिक्षा-मंत्रियों से—

दक्षिण भारत के एक हाईस्कूल के शिक्षक ने सरकार की ओर से विद्यार्थियों पर लगाये गये कुछ प्रतिबन्धो का वर्णन करते हुए नीचे लिखे अवतरण भेजे है।

"नियम ९१: जिस विद्यार्थी को सरकार के खिलाफ़ किसी भी आन्दोलन मे हिस्सा लेने के जुर्म मे अदालत से सजा हुई है, पहले से सरकार की इजाजत लिये बिना उसे किसी स्कूल मे दाखिल न किया जाय। स्कूल के किसी अफ़सर

या नौकर को सरकार के विरुद्ध किसी भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग न लेने दिया जाय; उसे ऐसी कोई राय जाहिर न करने दी जाय, जिससे सरकार के विरुद्ध बदगुमानी या बेवफाई के भाव फैले। विद्यार्थियो मे शामिल न होने दिया जाय।

१०० : यदि शिक्षक या सचालक ऐसी हरकते जारी रक्खे या विद्यार्थियों की ऐसी हरकतो को बढावा दे, या बरदाश्त कर ले, तो उन्हे उचित चेतावनी दे देने के बाद शिक्षा विभाग का डाइरेक्टर उस स्कूल को या तो अमान्य कर देगा, या सरकार की ओर से दी जानेवाली सहायता बन्द कर देगा या उस स्कूल के विद्यार्थियो को सरकारी छात्रवृत्ति की परीक्षाओ मे शामिल न होने देगा, और सरकारी छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थियो को ऐसे स्कूल मे दाखिल होने से रोकेगा।

१०१ : अगर किसी शिक्षक के सार्वजनिक भाषण विद्यार्थियो के सुकुमार मन में सरकार के प्रति अनादर पैदा करनेवाले हो; उनके व्यवस्थित विकास को रोकनेवाले हों, नागरिक के नाते उनकी उपयोगिता को कम करनेवाले हों; विद्यार्थियो के भावी जीवन की प्रगति में बाधा डालनेवाले हो; या शिक्षक खुद विद्यार्थियो को राजनैतिक सभाओ मे ले जाय, या जान-बूझकर उन्हे ऐसी किसी सभा मे उपस्थित रहने को प्रोत्साहित करे, या करता मालूम पड़े, तो यह समझा जायगा कि वह अपने कर्त्तव्य से चूका है; और उसके खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई की जायगी।

७९ . धार्मिक पुस्तकों को छोडकर स्कूल में ऐसी किसी भी पुस्तक का कभी उपयोग न किया जाय, जो सरकार द्वारा स्वीकृत न हो। स्कूलों में किसी पुस्तक या पुस्तकों का उपयोग करने या न करने देने का अधिकार सरकार ने अपने हाथ मे रक्खा है।

८० : (इस धारा के अनुसार यह लाजिमी है कि सभी बालको को टीका लगा हुआ हो। यद्यपि आजकल इसपर कोई अमल नही होता, फिर भी जरूरी है कि इसे रद्द ही करा दिया जाय।)

सरकार द्वारा स्वीकृत स्कूलो पर राष्ट्रीय झण्डा न फहराया जाय। कक्षाओ के अन्दर राष्ट्रीय नताओ की तसवीरे न लटकाई जायें। जिस स्कूल के विद्यार्थी

परीक्षा के समय प्रश्नो के जवाब में राष्ट्रीय विचार प्रकट करें, उन्हें सजा दी जाय। ये और ऐसे कई सरकारी गश्ती हुक्म अब तक कायम है।

सरकार को अब यह तरीका अख्तियार करना चाहिए कि शिक्षक मण्डल की राय जाने बिना पाठ्यक्रम मे कोई परिवर्तन न किया जाय। मद्रास मे एक सभा 'दक्षिण-भारत-शिक्षक-मण्डल' है। अिस मण्डल ने पहले की सरकार की उस नीति को निन्दनीय बताया है, जिसके अनुसार चौथे दर्जे की परीक्षा वह खुद लेती थी।

जिन प्रान्तो की मातृभाषा हिन्दी न हो, उनमे इस विषय को अधिक प्रोत्साहन दिलाने के लिए हिन्दी अध्यापको को दूसरो की अपेक्षा अधिक आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, जिससे इस विषय को स्थान देने में संचालको का दिल बढ़े। हिन्दी-प्रचारको को उर्दू लिपि का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये।

मद्रास सरकार का एक नियम है कि हेडमास्टरो को पाँच वर्ष के अन्दर पाठ्य पुस्तके न बदलनी चाहिए। अिस नियम से छात्रों के माँ-बाप की कोई आर्थिक लाभ या किफायत नही हो सकती। क्योकि जिनको ऊपर के दर्जों में चढ़ाया जाता है, उन्हे तो नई पुस्तके खरीदनी ही पड़ती है; और जो फैल किये जाते है, वे अधिकतर दूसरे मदरसो में दाखिल हो जाते है, जहाँ बिलकुल दूसरी पाठ्य पुस्तके होती है। इन नियमों की ७९ वी धारा के कारण कार्य-शक्ति की गति रुकती है, और राष्ट्रीय विचारो की पुस्तके चुनी नही जा सकती।

इस आशय की एक सूचना तुरन्त ही दे दी जानी चाहिए कि दो साल के अन्दर हाईस्कूल के सभी दर्जों मे मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम बन जाये। छठे दर्जे मे आजकल के चौथ दर्जे के बराबर अंग्रेजी सिखाई जानी चाहिए। अंग्रेजी की पढाई का समय कम कर देना चाहिए, और उसके ऐच्छिक वर्ग खोले जाने चाहिए। पाँचवी कक्षा के पहले और दूसरे वर्ग में अंग्रेजी के बदले हिन्दी दाखिल की जानी चाहिए और गणित की पढ़ाई कम कर देनी चाहिए। इससे हिन्दी की तरफ यथेष्ट ध्यान दिया जा सकेगा, और आज जो फिजूल की चीजें सिखाई जाती है, उनकी जगह हाथ के उद्योगो की सच्ची शिक्षा दाखिल की जा सकेगी।

९९ वी और १०० वी दण्डवाली धाराये रद की जाये, और उनके बदले ये तीन नियम बनाये जायँ कि हेडमास्टर अपने विद्यार्थियो को प्रत्यक्ष सामाजिक कार्य द्वारा नागरिक कर्त्तव्यो का पालन करने की, सफाई, स्वास्थ्य और आहार-सम्बन्धी ज्ञान की, और वर्तमान समय के राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नो की शिक्षा दे। अगर ऐसा किया गया तो अवाछनीय और अज्ञानजन्य आन्दोलन अपने आप दब जायेगे।

इनमे से अधिकाश रुकावट तो एक मिनट की भी देर किये बिना हटा दी जानी चाहिए। क्या विद्यार्थी और क्या शिक्षक, किसी के भी मन पिजरो मे बन्द न किये जाने चाहिए। जो मार्ग शिक्षक को अथवा सरकार को अच्छे-से अच्छा मालूम होता है शिक्षक विद्यार्थियो को उसी मार्ग पर ले सकता है। इतना कर चुकने पर फिर उसे कोई अधिकार नही रह जाता कि वह अपने विद्यार्थियो के विचारो या ावो को दबाये। इसका यह मतलब नही की विद्यार्थियो पर किसी भी प्रकार का अकुश ही न हो। बिना नियम-पालन या अनुशासन के तो कोई भी स्कूल नही चल सकता। लेकिन विद्यार्थियो के सर्वतोमुखी विकास पर, कृत्रिम अकुश रक्खा जाता है, उसका नियम-पालन या अनुशासन के साथ कोई सम्बन्ध नही है। जहाँ जासूसी से काम लिया जाता है, वहाँ तो यह एकदम असम्भव है। सच तो यह है कि आज तक हमारे छात्र जिस प्रकार के वातावरण मे रहते हैं, वह स्पष्ट ही अराष्ट्रीय रहा है। अब इस तरह का वातावरण मिट जाना चाहिए और विद्यार्थियो को यह समझना चाहिए कि अपने अन्दर राष्ट्रीय भावनाको बढाना पाप नही, पुण्य है, सदाचार है।

(हरिजन, १८ सितम्बर, १९३७)

आजकल गाधीजी का स्वास्थ्य अच्छा नही है, और उन्हे पूरा-पूरा आराम करने की आवश्यकता है। फिर भी, जो कोई भी सज्जन जिन्होने स्वावलम्बी शिक्षा के उनके सिद्धान्त पर कुछ सोचा है, उसकी चर्चा के लिए उनके पास आते है या इस नये प्रयोग को सफल बनाने मे अपनी ओर से कुछ करने की इच्छा प्रकट करते है, उनके साथ इस विषय की चर्चा करने की तत्परता वे बराबर बताते रहते हैं। उनके दुर्बल स्वास्थ्य के कारण चर्चाएँ कम होती है, संक्षिप्त होती है, लेकिन हरएक चर्चा से कुछ न कुछ नई जानने योग्य चीज निकलती है। और

जब-जब गाधीजी इस विषय की चर्चा करते है, तब-तब एक-न-एक नई सूचना अथवा नया प्रकाश डालनेवाली बात कहते है। एक बार उन्होने कहा कि कोई यह न समझे कि स्वावलम्बी शिक्षा का कल्पना सपूर्ण शराब-बन्दी के कारण उत्पन्न हुई है, और फिर कहने लगे "आपको इस दृढ विश्वास के साथ ही आरम्भ करना चाहिए कि आमदनी हो या न हो, शिक्षा दी जाये या न दी जाये, फिर भी सम्पूर्ण शराब-बन्दी तो करनी ही होगी। इसी तरह आपको यह दृढ श्रद्धा रखकर श्रीगणेश करना चाहिए, कि हिन्दुस्तान के गाँवो की आवश्यकताओ को देखते हुए, अगर हम गाँवो की शिक्षा को अनिवार्य बनाना चाहते है, तो वह शिक्षा स्वावलम्बी ही होनी चाहिए।"

एक शिक्षा-शास्त्री, जो गाधीजी से चर्चा कर रहे थे, बोले: "पहली श्रद्धा तो मेरे मन मे गहरी जड जमा चुकी है। और उसी को मै बहुत बडी शिक्षा समझता हूँ। अतएव शराब-बन्दी को सफल बनाने के लिए शिक्षा का बिलकुल ही त्याग करना पडे तो मै ज़रा भी न हिचकिचाऊँगा। लेकिन दूसरी श्रद्धा मेरे मन मे बस नही रही है। मै आज भी यह मानने को तैयार नही हूँ कि शिक्षा स्वावलम्बी बनाई जा सकती है।"

"मै चाहता हूँ कि इसमे भी आप वैसी ही श्रद्धा से काम शुरू करे। जब आप इसका अमल शुरू करेगे, तो इसके साधन और मार्ग आपको सहज ही सूझने लगेगे। इस तरह का प्रयोग मै खुद ही करता, अब भी अगर ईश्वर की कृपा रही तो मै अपने भरसक यह सिद्ध करने की कोशिश करूँगा कि शिक्षा किस प्रकार स्वावलम्बी बन सकती है। लेकिन पिछले कई वर्षो से मेरा सारा समय दूसरे-दूसरे कार्यो मे खर्च होता रहा है, और शायद वे काम भी उतने ही महत्त्व के थे। लेकिन इधर सेगॉव मे रहने के कारण इसके विषय मे मुझे बहुत ही पक्का विश्वास हो गया है। अब तक हमने लडको के दिमाग में हर तरह की जानकारी ठूँसने का ही यत्न किया है; मगर इस बात को कभी सोचा भी नही कि उनके दिमाग कैसे खुले और किस तरह उनकी तरक्की हो। अब हमें 'रुक जाओ!' (हॉल्ट) कहकर शारीरिक काम द्वारा बालक को समुचित शिक्षा देने के काम में अपनी शक्तियाँ लगा देनी चाहिए। शिक्षा मे शारीरिक काम का स्थान गौण न हो; बल्कि वही बौद्धिक शिक्षा का मुख्य साधन रहे।"

"मैं इस चीज को भी समझ सकता हूँ, लेकिन आप यह शर्त क्यो लगाते है, कि इससे स्कूल का सब खर्च भी निकलना चाहिए ?"

"इस शर्त से हम इस बात की परीक्षा कर सकेगे, कि इस तरह का शारीरिक काम कितना मूल्यवान् है। चौदह वर्ष की उम्र मे, अर्थात् ७ साल की पढाई समाप्त करने के बाद, जब बालक स्कूल से निकले, तो उसमे कुछ कमाने की शक्ति आ जानी चाहिए। आज भी गरीबो के बालक अपने-आप अपने माँ-बाप की सहायता करते है। उनके मन मे यह खयाल होता है, कि अगर हम अपने माँ-बाप के साथ काम न करेगे, तो क्या वे खायेगे, और क्या हमे खिलायेगे ? यही एक शिक्षा है। इसी तरह सरकार सात साल की उमर मे बालक को अपने कब्जे मे ले, और उसे कमाऊ बनाकर वापस माँ-बाप को सौंप दे। जिस तरीके से आप शिक्षा भी देगे और साथ ही बेकारी की जड को भी काटते चलेगे। यह आवश्यक है कि किसी न किसी धन्धे की शिक्षा बच्चो को जरूर दें। इस मुख्य उद्योग के आस-पास आप उस शिक्षा का प्रबन्ध करेगे, जो बालक के मस्तिष्क, शरीर, साहित्य और कलाभिरुचि के विकास में सहायक होगी। बालक जो कारीगरी सीखेगा, उसका वह निष्णात भी बनेगा।"

"मान लीजिये कि एक लडका खादी-निर्माण की कला और शास्त्र को सीखना शुरू करता है। तो क्या आप यह समझते है कि उस कला म निष्णात बनने के लिए उसे पूरे सात वर्ष लग जायेगे ?"

"जी हाँ, अगर वह यन्त्र की तरह न सीखे, तो सात साल जरूर लगने चाहिएँ। हम इतिहास के अथवा भाषा के अध्ययन के लिए सारे वर्ष क्यों खर्च करते है ? इन विषयो को अब तक जो बनावटी बडप्पन दिया जाता है, क्या उनके मुकाबिले इस उद्योग का महत्व कुछ कम है ?"

"लेकिन आप तो प्रधानतया कताई और पिजाई का विचार करते है। इससे तो ऐसा मालूम होता है कि आप इन स्कूलों को बुनाईशाला बनाना चाहते हैं। किसी बालक की रुचि बुनाई की तरफ न हो और दूसरी किसी चीज में हो, तो उसके लिए क्या कीजियेगा ?"

"सच है; उस दशा में हम उसे कोई दूसरा उद्योग सिखायेंगे। लेकिन आपको जानना चाहिए कि एक स्कूल मे बहुत से उद्योग सिखाने का प्रबन्ध न

हो सकेगा। खयाल यह है कि हमे हर २५ विद्यार्थियो के लिए एक शिक्षक रखना चाहिए, और, जितने शिक्षक मिले, उतने पचीस-पचीस विद्यार्थियो की कक्षाओ या पाठशालाओ का प्रबन्ध करना चाहिए; और इनमें से हरएक पाठशाला में एक-एक अलग-अलग उद्योग का, जैसे, बढईगिरी, लुहारी, चमारी या मोचीगिरी का शिक्षण देना चाहिए। आपको सिर्फ एक बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि इनमें से हरएक उद्योग द्वारा हमें बालकों के मन का विकास करना है। इसके सिवा एक दूसरी बात पर भी मै जोर देना चाहता हूँ– आपको शहरों का खयाल छोड देना चाहिए और सारी शक्ति का उपयोग गाँवो मे करना चाहिए। गाँव महासागर है, और शहर इस सागर में बूंद की तरह है। इसीलिए इसके सिलसिले मे आप ईंट वगैरा बनाने का विचार नही कर सकते। जो लडके इजीनियर बनना चाहेगे, वे सात साल की पढाई के बाद उच्च और विशिष्ट अध्ययन के लिए कॉलेजों मे जायेगे।

"एक और चीज पर भी मै जोर देना चाहता हूँ। हमारी आदत हो गई है, कि हम गाँवो के उद्योग-धन्धो को कोई चीज नही समझते। क्योकि हमने शिक्षा को शारीरिक श्रम से अलग रखा है। शरीरश्रम को कुछ हलका स्थान दिया गया है, और वर्णसकरता के प्रचार के कारण, आज हम कत्तिनो, जुलाहों, बढ़इयो और मोची वगैरा को, हलकी या गुलाम जाति का समझने लगे है। चूंकि हमने उद्योग को कुछ हलका समझा, यानी बुद्धिमानो की शान के कुछ खिलाफ समझा, इसीलिए हमारे यहाँ क्राम्पटन और हारग्रीव के समान यंत्रशास्त्री उत्पन्न न हुए। यदि हमने इन धन्धो की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा मानी होती, और इनके दर्जे को विद्वत्ता के समान ही ऊँचा समझा होता, तो हमारे कारीगरों मे से भी बडे-बडे आविष्कारक अवश्य पैदा हुए होते। इसमें कोओी शक नही कि यत्रों के आविष्कार के साथ ही साथ मिले खडी हो गईं और उन्होने हजारो को बेकार बना दिया। मै मानता हूँ कि यह एक आसुरी चीज थी। यदि हम अपनी समस्त शक्ति को गाँवो मे खर्च करेगे, तो कला-कारीगरी या दस्तकारियो के एकाग्र अभ्यास से जो शोधक बुद्धि जाग्रत होगी, वह गाँवो के तमाम लोगो की जरूरतों को पूरा करेगी।"

(हरिजन, १८ सितम्बर, १९३७)

राष्ट्रीय शिक्षकों से—

जो किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षण-सस्थाओ का सचालन कर रहे है, उन शिक्षको से मेरी यह सूचना है कि प्राथमिक शिक्षा के बारे में आजकल मै जो कुछ लिख रहा हूँ यदि वह उनके गले उतरता हो, तो वे यथाशक्ति उसपर अमल करे, उसका ठीक-ठीक हिसाब रक्खे, और अपने अनुभव मुझे लिख भेजे। जो मेरी पद्धति के अनुसार पाठशाला चलाने को तैयार हो, इस समय फुरसत में हो, अथवा जिस काम मे लगे हुए है, उसे छोडकर इस तरह की पाठशाला का सचालन करने को तैयार हो, वे भी मुझे लिखे।

मै मानता हूँ कि प्रायमरी स्कूलो को स्वावलम्बी बनाने के लिए हमारी पहली नजर कताई वगैरा के उद्योग पर ही पड़ती है। इसमे कपास की बिनाई से लेकर बेलबूटेदार यानी नक्शीदार खादी बनाने तक की क्रियाओं का समावेश हो जाता है। अिसके लिए फी घटा कम-से-कम दो पैसे की मजदूरी गिनी जानी चाहिए। स्कूल का काम पाँच घटे का रहे, जिसमे चार घटे मजदूरी के और अेक घटा उस उद्योग के शास्त्र को और दूसरे विषयो को, जो उद्योगो के साथ न सिखाये जा सकते हो, सिखाने का रहे। उद्योग सिखाते समय जो विषय सिखाये जायेंगे, उनमे एक हद तक या पूरी हद तक इतिहास, भूगोल और गणितशास्त्र का समावेश रहेगा। इसमे भाषा के ज्ञान का, उसके अंग-रूप व्याकरण का और शुद्ध-शुद्ध उच्चारण का भी समावेश होगा, क्योंकि शिक्षक उद्योग को सब प्रकार के ज्ञान का वाहन समझेगा और उसके द्वारा बालको की बोली को शुद्ध और स्पष्ट बनायेगा। इस प्रयत्न मे व्याकरण का ज्ञान वह सहज ही करा सकेगा। गिननें की क्रिया तो बालकों को शुरू से ही सीखनी होगी। अर्थात् ज्ञान का आरम्भ गणित से होगा। सफाई और सुघराई कोई अलग विषय नही रहेगा। बालकोंके प्रत्येक काम मे सफाई और सुघराई होनी ही चाहिए। साफ-सुथरेपन के साथ ही वे स्कूल मे प्रवेश करेंगे। इसलिये इस वक्त मेरी कल्पना मे ऐसा एक भी विषय नही आता, जो उद्योग के साथ-साथ बालको को न सिखाया जा सके।

मेरी यह कल्पना जरूर है कि जिस प्रकार मैंने सीखने के विषयो को अलग-अलग नही माना है, बल्कि सबको एक-दूसरे मे ओत-प्रोत समझा है, और सबकी उत्पत्ति एक ही चीज से हुई है, उसी प्रकार शिक्षक की कल्पना भी एक ही की है। हर एक विषय के अलग-अलग शिक्षक नही होगे। एक ही शिक्षक होगा। हाँ, साल के हिसाब से जरूर अलग-अलग शिक्षक होगे। यानी अगर सात दर्जे है, तो सात शिक्षक रहेगे। और एक शिक्षक के पास पच्चीस से ज्यादा लडके न होगे। अगर शिक्षा अनिवार्य की जाये, तो मै यह आवश्यक मानूँगा कि शुरू ही से लडको और लडकियो की कक्षाये अलग-अलग रक्खी जाये। क्योकि अखीर मे सबको एक ही तरह के धन्धे नही सीखने होगे। इसलिए मैं मानता हूँ कि शुरू से अलग-अलग श्रेणियो का रहना अधिक सुविधाजनक होगा।

इस पद्धति मे घटो की और शिक्षको की सख्या मे, और विषयो की व्यवस्था मे परिवर्तन की गुजाइश हो सकती है। लेकिन जिस सिद्धान्त को आधार मानकर प्रत्येक शाला का सचालन होगा, उसे अटल समझकर ही मेरी कल्पना की यह पाठशाला चल सकती है। इन सिद्धान्तो को कार्यरूप मे परिणत करके किसी प्रकार के मूर्त्त परिणाम अभी तक चाहे न बताये जा सके हो, लेकिन जो मत्री इस प्रकार की शिक्षा को शुरू करना चाहते है, उनको इन सिद्धान्तो पर अवश्य ही श्रद्धा होनी चाहिए। चूँकि इस श्रद्धा का आधार बुद्धि होगी, इसलिए इसका स्वरूप अन्ध-श्रद्धा का नही, ज्ञानमयी श्रद्धा का होगा। ये सिद्धात दो है—

(१) शिक्षा का वाहन कोई भी ग्रामोपयोगी उद्योग हो। और

(२) सब मिलकर शिक्षा स्वावलम्बी हो, अर्थात् शुरू के एक-दो साल कुछ कम स्वावलम्बी भले हो, लेकिन सात साल की औसत निकालने पर आमदनी और खर्च का हिसाब बराबर होना चाहिए। मैंने इस शिक्षा के लिए सात साल माने है, लेकिन इनमें घट-बढ़ हो सकती है।

(हरिजनबन्धु, १९ सितम्बर, १९३७)

बम्बई में प्राथमिक शिक्षा

अबतक मैंने जो चर्चा की है, वह गाँवो की शिक्षा के विषय में की है, क्योंकि वही सारे हिन्दुस्तान का प्रश्न है। यदि यह सीधी तरह हल हो सके, तो शहरो की कोई खास कठिनाई न रह जाये। शहरो के विषय मे मैंने अबतक इसी वजह से कुछ नही लिखा। लेकिन शिक्षा मे रस लेनेवाले बम्बई के एक नागरिक का नीचे लिखा प्रश्न उत्तर की अपेक्षा करता है :

"प्राथमिक शिक्षा के भारी खर्च का कोई रास्ता निकालने में इस समय कॉंग्रेसी मत्रि-मण्डल यत्नशील मालूम होता है। यह सुझाया गया है कि शिक्षा का खर्च शिक्षा ही से निकल सकता है। बम्बई-जैसे शहर मे इस दिशा मे किस तरह और किस हद तक बढ़ा जा सकता है, इसकी चर्चा आवश्यक मालूम होती है। कहा जाता है कि इस साल बम्बई कॉरपोरेशन ने शिक्षा पर करीब ३५–३६ लाख रुपया खर्च करने का बजट बनाया है, और अगर सारे शहर में शिक्षा को अनिवार्य कर दिया जाये, तो इस खर्च मे कई लाख रुपयो की रकम और बढ़ जाये। शिक्षको के वेतन में और किराये मे क्रमश: बीस लाख और चार लाख से ज्यादा रकम खर्च होती है। फी विद्यार्थी सालाना खर्च की औसत ४० से ४२ रुपये तक आती है। अगर विद्यार्थी अपनी पढाई के साथ-साथ साल मे इतने रुपयों का काम भी करके दें, तभी शिक्षा का खर्च शिक्षा से निकल सकता है। लेकिन यह होगा किस तरह?"

मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि अगर बम्बई के स्कूलो मे भी उद्योग के तत्व को स्थान दिया जाय, तो उससे बम्बई के बालको को और बम्बई शहर को फायदा ही पहुँचेगा। शहर मे पले–पुसे बालक तोते की तरह कविता रटेंगे और सुनायेंगे; नाचेंगे; हाव-भाव और अभिनय करके दिखा देंगे, बैंड–बाजे बजा सकेंगे; कसरत-कवायद और कूच करना जानेंगे; इतिहास और भूगोल के प्रश्नो का उत्तर देंगे और थोडा बहुत अंकगणित भी जान लेंगे। लेकिन इससे आगे वे न बढ़ सकेंगे। हाँ, एक बात मै भूला; वे थोड़ी अंग्रेजी भी जरूर जानते होंगे। लेकिन

एक टूटी हुई कुर्सी को दुरुस्त करना या फटे हुए कपडे को सी लेना उनके लिए मुश्किल होगा । वे इसे नही कर सकेंगे । ऐसे मामलों में हमारे शहरो के लडके जितने अपग या निकम्मे पाये जाते है, उतने अपग लडके दक्षिण ऑफ्रिका और इंगलैंड की अपनी यात्राओ में मैंने कही नही देखे ।

इसलिए मै तो मानता ही हूँ कि अगर शहरों में भी उद्योग द्वारा शिक्षा दी जाये, तो उससे बालकों को बेहद लाभ होगा । और, पूरे ३५ लाख रुपये नही, तो उनका एक बडा हिस्सा जरूर बच रहेगा । ४२ रु०के बदले फी बालक साल के ४० रु० का खर्च भी मान ले, तो यह कहा जा सकता है कि बम्बईवाले ८७,५०० बालको को पढाते है । अगर १० लाख की बस्ती हो, तो बालकों की सख्या कम-से-कम डेढ लाख होनी चाहिए । इसका मतलब यह हुआ कि लगभग ६२.००० बालक बिना शिक्षा के रह जाते है । अगर यह मान लें कि ये सब गरीब नही है, और बहुतेरे खानगी मदरसो मे जाते है, तब भी ५६,००० बालक रह जाते है । इनके लिए आज के हिसाब से २२,२४००० रुपयो की जरूरत होगी । बम्बई कब तो इतने रुपयों का प्रबन्ध करे, और कब इन सब बालको को पढ़ावे ? और क्या पढावे ?

मै मानता हूँ कि शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त होनी ही चाहिए । लेकिन बालकों को उपयोगी उद्योग सिखाकर उसके द्वारा ही उनके शरीर और मन का विकास किया जाना चाहिए । मै इसमे भी पैसे का जो हिसाब लगाता हूँ वह अनुपयुक्त न समझा जाना चाहिए । अर्थशास्त्र नैतिक और अनैतिक, दोनो प्रकार का होता है । नैतिक अर्थशास्त्र के दोनों पहलू एक-से होते है, जब कि अनैतिक में जिसकी लाठी उसकी भैस वाली बात होती है । उसके विस्तार का सारा दारोमदार उसकी ताकत पर है । अनैतिक अर्थशास्त्र जिस तरह घातक है, उसी तरह नैतिक आवश्यक है । इसके अभाव में धर्म की परख को और उसके पालन को मै असम्भव समझता हूँ ।

मेरा नैतिक शास्त्र मुझे जरूर ही यह सुझाता है कि बम्बई के बालक हर महीने हँसते-खेलते तीन रुपये का काम करके दें । अगर चार घटे काम करें और हर घटे के दो पैसे भी धर ले, तो महीने के २५ दिनो में वे ५० आने का काम करेंगे, यानी हर महीने स्कूल में रहकर रु० ३–२–० कमा लेंगे ।

यह मानने की कोई वजह नही मालूम होती कि जब शिक्षा के ढग पर उद्योग सिखाया जायेगा, तो बालक काम के बोझ से दब जायेगे। नाम-मात्र के शिक्षक तो इतिहास, भूगोल-जैसे सरल और दिलचस्प विषयों को भी ऐसे ढग से सिखाते है, कि लडको का दिल ऊबने लगता है। लेकिन मैने अपनी आँखो देखा है, कि जो सच्चे शिक्षक होते है, वे अपने शिष्यो को हँसते-खेलते उद्योग सिखाते है। मै आशा रखता हूँ कि कोई मुझसे यह सवाल न करेगा कि ऐसे शिक्षक कहाँ से आयेगे। एक बार जब किसी चीज को हम करने योग्य मान लेते है, तो फिर उसके करनेवालो को तैयार करना सहज ही उन व्यक्तियों और सस्थाओ का धर्म हो जाता है, जो उस चीज को मानती है। इसमें शक नही कि ऐसे शिक्षको को तैयार करने मे थोडा समय चला जायगा। लेकिन आजकल के अनुपयुक्त शिक्षण के निर्माण मे और उसके लिए शिक्षक तैयार करने म जितना समय खर्च हुआ है, उसका शताश भी इसमे खर्च नही होगा। और पैसे का खर्च तो उसके मुकाबले कम होगा ही। अगर बम्बई शहर की म्युनिसिपैलिटी का कारोबार मेरे हाथ मे हो, तो ऐसे शिक्षा-शास्त्रियो की एक छोटी-सी समिति स्थापित करूँगा, जिन्हे मेरी कल्पना मे थोडी भी श्रद्धा है, और उनसे यह आशा रक्खूगा कि वे एक महीने के अन्दर अपनी योजना बनाकर दे, ताकि तुरन्त ही उसे अमल मे लाया जा सके। इसमे यह विश्वास अवश्य आ जाता है कि मुझे अपनी इस कल्पना की शक्यता मे अटल श्रद्धा है। उधार ली हुई श्रद्धा से आजतक कोई अच्छे और बडे काम नही हुए।

एक प्रश्न रह जाता है। शहरो मे कौन-से उद्योग सहूलियत के साथ सिखाये जा सकते है? मेरे पास तो इसका उत्तर भी तैयार ही है। मै हिन्दुस्तान के गाँवों को सबल और सुपुष्ट देखना चाहता हूँ। आजकल तो गाँव शहरों के लिए जीते है। उनपर निर्भर करते है। यह अनर्थ है। शहर गाँवो पर निर्भर करने लगे, अपने बल को गाँवो से प्राप्त करे, अर्थात् गाँवो से लाभ उठाने के बदले स्वय गाँवों को लाभ पहुँचायें, तो हमारा मतलब सिद्ध हो और अर्थशास्त्र नैतिक बने। ऐसे शुद्ध अर्थ की सिद्धि के लिए शहरी बालको के उद्योग का देहाती बालको के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। इसके लिए इस समय, मुझे जो कुछ सूझ रहा है, सो तो पिजाई से लेकर कताई तक के उद्योग है। आज भी

कुछ अिसी तरह हो रहा है। गाँवो से कपास आता है, और मिलोमे कपड़ा बुना जाता है। इसमे शुरू से अखीर तक धन की बरबादी की जाती है। कपास ज्यों-त्यो बोया जाता है, जैसे-तैसे बीना जाता है और अुसी ढग से साफ भी किया जाता है। किसान इस कपास को अधिकतर घाटा सहकर राक्षसी जीनों मे बेचते है, वहाँ बिनौले अलग होते है, कपास कुचला और अधमरा किया जाता है और फिर वह गाठो मे बँधकर मिलो मे पहुँचाया जाता है। वहाँ वह धुना जाता है, कतता है और बुना जाता है। ये सारी क्रियाये इस तरह होती है, कि कपास के सत्व को जलाकर उसे निर्जीव बना देती है। मेरी इस भाषा से कोअी द्वेष न करे। कपास मे जीव तो है ही। इस जीव के प्रति मनुष्य या तो कोमलता का व्यवहार करता है या राक्षसी। आजकल के व्यवहार को मै राक्षसी व्यवहार मानता हूँ।

कपास की कुछ क्रियाये गाँवो और शहरो, दोनो मे हो सकती है। ऐसा होने पर ही शहर और गाँव का सम्बन्ध नैतिक और शुद्ध बन सकता है। इससे दोनो की वृद्धि होती है, और आजकल की अव्यवस्था, भय, शका और द्वेष या तो निर्मूल हो जाते है, या निस्तेज पड जाते है। इस प्रकार गाँवो का पुनरुद्धार हो सकता है। इस कल्पना को अमली रूप देने मे बहुत थोडे खर्च की जरूरत रहती है। बडी आसानी से इसे मूर्त्तरूप दिया जा सकता है। परदेशी बुद्धि या परदेशी यंत्रो की आवश्यकता नही रहती। देश की अलौकिक या असाधारण बुद्धि भी आवश्यक नही होती। देश मे एक ओर घोर गरीबी और दूसरी ओर अमीरी का जो दौर चल रहा है, वह मिट सकता है। दोनो में मेल हो सकता है। और लड़ाई-झगड़े का व खून-खराबी का जो डर हमेशा हमपर सवार रहता है, वह दूर हो सकता है। लेकिन बिल्ली के गले मे घंटी कौन बाँधे ? बम्बई कारपोरेशन का दिल मेरी कल्पना की ओर किस तरह रुजू हो ? बनिस्वत इसके कि यहाँ सेगाँव में बैठे-बैठे मै इसका जवाब दूँ, इस पत्र के लेखक, बम्बई के यह विद्या–प्रेमी नागरिक ही ज्यादा अच्छी तरह दे सकते है।

(हरिजन–बन्धु, २६ सितम्बर, १९३७)

स्वावलंबी पाठशालाअें

"हमारी वर्तमान आर्थिक स्थिति का मुख्य स्वरूप यह है कि देश की साधन-सामग्री पर आधार रखनेवाले लोगो की सख्या का बोझ बढता जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान मे ऐसे विशाल भू-भाग नही है, जिनका पता अबतक न लगाया गया हो। इसी तरह हमारे देश में उपनिवेशों की और पूंजी की भी अधिकता नही है। इसलिए हमारी मौजूदा साधन-सामग्री से तैयार माल पैदा करने का काम उन्ही लोगो को सौंपा जाना चाहिए, जिन्होने इसकी खास शिक्षा पाई हो। अगर १०० आदमी जमीन के सौ अलग-अलग टुकडो को जोतते हैं, तो सिर्फ ५० आदमियों की जरूरत को पूरा करने वाला अनाज पैदा करते है। लेकिन अगर ये सभी टुकडे मिला दिये जायें और २० निष्णात आदमी इसपर खेती करे, तो यही जमीन १०० आदमियो का निर्वाह कर सकती है। आजकल ऐसे आविष्कार हुए है, जिससे मजदूर के गृह-जीवन को अस्तव्यस्त किये बिना, और उसकी स्वतन्त्रता को कुचले बिना, उसकी उत्पादन शक्ति बढाई जा सकती है। इसलिए अब इस बात की खास जरूरत पैदा हो गई है कि अधिक लोगो को काम करने से रोका जाय। ५० साल की उमर के बाद लोगो को पेंशन दे देने के रिवाज से बहुत नुकसान हो रहा है, क्योकि साधारण मनुष्य की मानसिक और शारीरिक शक्ति का इस उमर के बाद ही अधिकाधिक विकास होता है। इसलिए मुनासिब तो यह है कि जबतक लोग पूरी तालीम पाकर तैयार न हो जायें, उन्हे गृह-जीवन में प्रवेश करने से रोका जाय!

"हिन्दुस्तान की अवनति का मुख्य कारण यह है, कि यहाँ मजदूर अपने जीवन का आरम्भ बहुत ही पहले करते है। बढई अपने लड़के को अपने धन्धे में इतनी जल्दी दाखिल करता है कि लडका १२ वर्ष की उमर में अपनी उपार्जन-शक्ति की चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इसके बाद वह शादी करता है, और कुछ ही समय के अन्दर अपना धन्धा शुरू कर देता है। इसके कारण उत्पादन और विभाजन के नये तरीके उसके दिमाग में उतर ही नहीं पाते। उसको इस

बात की कोई तमीज़ नही होती कि आर्थिक दृष्टि से उसकी मज़दूरी का क्या महत्त्व है। कोई भी आदमी ऐसे कारीगर को धोखा दे सकता है, और उसका शोषण कर सकता है। वह अपनी छोटी-सी सकुचित दुनिया में कुएँ के मेढ़क की तरह जीता है, और किसी तरह अपना गुज़र-बसर करने और परिवार को बढाने मे सतुष्ट रहता है। हिन्दुस्तान में जो सकुचितता, सन्तोष-प्रियता, भाग्यवाद, जाति-पाँति के बन्धन और शराब और अफीम के व्यसन पाये जाते है, उन सबकी जड मे यही चीज है। मै जब लका मे चाय के बगीचे देखने गया, तो सबसे ज्यादा दुःख मुझे वहाँ बालको को मजदूरी करते देखकर हुआ। मदरसे तो वहाँ थे, लेकिन माँ-बाप का झुकाव लडको से मजदूरी कराने की तरफ ज्यादा देखा। बडो की पुश्त हमेशा आनेवाली छोटी पुश्त की तरफ के अपने कर्त्तव्य को, बला की तरह, सिर से टालना चाहती है। सरकार का काम है, कि वह उन प्रवृत्तियो को रोके, जो व्यक्तियो के लिए फायदेमद होते हुए भी समाज के लिए नुकसानदेह हो। लका-जैसे देश मे, जहाँ प्राकृतिक साधनो के भण्डारो का पता लगाकर उनका उपयोग करने के लिए लोगो को पर्याप्त आबादी नही है, बालको से मज-दूरी कराने की प्रथा का बचाव नही किया जा सकता, तो हिदुस्तान में, जहाँ बालको से काम लेने पर बडो की बेकारी बढती है, इसका बचाव हो ही कैसे सकता है?

"हमे इस भ्रम मे न रहना चाहिए कि माल तैयार करके बाजार मे बेचने वाली कारखानेनुमा स्वावलम्बी पाठशालाये कभी शिक्षा का काम करेगी। प्रत्यक्ष व्यवहार मे तो यह क़ानूनसम्मत बाल-मजदूरी ही सिद्ध होगी। उदाहरण के लिए, जब किसी मदरसे में कताई दाखिल की जायेगी, तो वहाँ चर्खे का चलाना या सूत का कातना एक यान्त्रिक क्रिया बन जायेगी। मेरी समझ मे यह बात नही आती, कि एक थान के लिए जितना सूत आवश्यक है, उस सूत को गिनने से गणित सीखा जा सकता है, अथवा रुई के विकास और सुधार को देखकर विज्ञान और भूगोल सिखाया जा सकता है। ये चीजे एकाध बार तो मन को सतेज कर सकती है, लेकिन अगर वर्षों तक यही जारी रहें, तो मन की बाढ़ रुक जाये, और वह एक ठहरी हुई लीक पर काम करने लग जाय। मै मानता हूँ कि आँख, कान, हाथ वगैरा की तालीम बहुत ज़रूरी है, और यह भी मानता हूँ कि शरीर-

श्रम को सभी स्कूलो मे लाजिमी कर देना चाहिए। लेकिन हमे यह न भूलना चाहिए कि जिसे हम हाथ की तालीम कहते है, वह असल मे दिमाग की ही तालीम होती है। किसी भी स्कूल को, जो बच्चो को शिक्षा देना चाहता है, बाजार मे बिक्री के लिए माल तैयार करने का विचार छोड ही देना चाहिए। उसका फर्ज है कि वह बच्चो को तरह-तरह का कच्चा माल और यत्र दे, जिनपर प्रयोग करके बालक थोडी नुकसानी भी करे तो हर्ज नही। बिगाड या नुकसान तो होगा ही। श्री नरहरि पारिख ने हरिजन आश्रम साबरमती की लडकियो की कताई के कुछ आँकडे दिये है। सावधानी के साथ इन आँकडो का अध्ययन करने से पता चलता है, कि जो स्कूल एक ही काम को लेकर बैठ जाता है, और जिसमे बडी उमर के तालीमयाफ्ता बालक होते है, उसमे भी नुकसान तो ठीक-ठीक होता है। उद्योगधन्धो की शिक्षा देनेवाले स्कूल वैज्ञानिक कॉलेजो की तरह प्रयोग करने और साधनसामग्री को बिगाडने की जगह है। हिन्दुस्तान-जैसे गरीब देश को तो ऐसे स्कूल कम-से-कम, और सिर्फ उतने ही खोलने चाहिए, जितने जरूरी हो, और सो भी कुछ चुने हुए बडे-बडे केन्द्रो मे। अगर गोरखपुर और अवध के लडको को चुनकर चमडा कमाने का काम सीखने के लिए कानपुर भेजा जाये, तो उससे राष्ट्र की कोई हानि न होगी। लेकिन अगर उद्योग-धन्धे सिखानेवाली असख्य पाठशालाये खोली जायेगी, तो उनसे नुकसान हुए बिना न रहेगा।

"एक दूसरे प्रकार का नुकसान भी है, जो आमतौर पर ध्यान मे नही आता। एक रतल रुई से अगर बड़ी उमर का कुशल मजदूर चार आदमियो के उपयोग का कपडा बना सकेगा, तो उतनी ही रुई से अनपढ या गँवार मज़दूर मुश्किल से दो की ज़रूरत का कपडा बना पायेगा। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तान की कपड़े की ज़रूरत को पूरा करने के लिए आजकल की अपेक्षा दूनी जगह मे कपास की खेती करनी होगी। दूसरे शब्दो मे, इसीको यो कह सकते हैं, कि अगर अनपढ मजदूरो से काम लिया जाये, तो कपड़े की ज़रूरत को पूरा करने के लिए हिन्दुस्तान को जितनी जमीन मे कपास की खेती करनी पडेगी, उतनी ज़मीन मे हिन्दुस्तान की अन्न और वस्त्र, दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करनेवाला अनाज और कपास पैदा हो सकता है; बशर्ते कि सारा काम कुशल मज़दूरों या किसानों से कराया जाये।

"इस नुकसानी का तीसरा पहलू भी ध्यान देने योग्य है। कहा जाता है कि स्कूल मे बालक तरह-तरह की सुन्दर चीजे बना सकते है। कुछ दिनो पहले एक उद्योग-शाला मे सीखे हुए लडके को मैंने 'प्लाय वुड' से खिलौना बनाते देखा था। वह जिस लकडी का और जिन औजारो का उपयोग कर रहा था, सो सब स्वदेशी थे। ऐसे उद्योग परदेशी माल की नई माँग या खपत हमारे यहाँ पैदा करते है। इसपर कोई कह सकता है कि हम अपना 'प्लाय वुड' खुद तैयार कर सकते है, लेकिन अमेरिका की तरह हिन्दुस्तान मे इतनी फाजिल ज़मीन नहीं है, कि हम इन झाडो को उगा सके। अगर कच्चे माल का और पूँजी का उपयोग बेकार चीजों के बनाने मे होता है, तो उसे रोकना चाहिए, न कि उत्तेजन देना चाहिए।

"स्कूलो और कॉलेजो मे जो सुकुमारमति बालक पढते है, वे रुपया आना पाई और नफे-नुकसान की दुनिया में नही, बल्कि विचारो और आदर्शो की सृष्टि में विहार करते है। ऐसी सुकुमार अवस्था मे अगर उनके सामने माल पैदा करने, बेचने और पैसा खडा करने का आदर्श रक्खा जायेगा, तो उससे बच्चो का विकास रुकेगा, और आज ससार मे दौलत की उमडती दरिया के बीच लोगो को जिस गरीबी मे रहना पडता है, वह बहुत अधिक बढ जायगी। यहाँ यह जानने योग्य बात है कि श्री रामकृष्ण उद्योग धन्धो की शिक्षा को कोई महत्त्व नहीं देते थे।

"मै तो इसे भी एक अजीब-सा भ्रम ही समझता हूँ, कि हम अपने यत्नों से शिक्षा की गति को बढा सकते है, यानी बालक जिस चीज को आज सात बरस में सीखता है, उसे दो वर्ष में सिखा सकते है। बच्चो का दिमाग खाली बोतल की तरह नही होता, कि उसमे जो कुछ भरना हो, भरा जा सके। जिस चीज को बालक १६ वे वर्ष ही मे सीख सकता है, उसे ८ वे साल मे सीखने की कोशिश वह नही कर सकता और न उसे करना चाहिए। यह कहना ठीक नही है कि विदेशी भाषा के कारण इतनी देर लगती है। फिर, जितना लोग समझते है, उतना समय इस विषय को दिया भी नही जाता। निबन्ध लेखन की शिक्षा मस्तिष्क और भावना की शिक्षा है। इस तरह की शिक्षा धीमी ही हो सकती है। मस्तिष्क का

विकास करने के लिए जिन साधनो और तरीको का उपयोग किया जाता है, सम्भव है वे अनुत्पादक, हानिकारक और धीमे मालूम पडे। लेकिन याद रखना चाहिए कि शिक्षा का उद्देश्य मन को बलवान बनाना और जीवन मे उसे जिस प्रकार के समझौते करने पड़ते हैं, वैसे समझौते करना सिखाना है। हमें यह आशा न रखनी चाहिए, कि हम पाठशालाओ मे मनुष्यों के उपरान्त माल भी पैदा करके दें।

"इस सब का सार यह है कि जिस नीति से हमारी पाठशालाये सम्पन्न, किन्तु राष्ट्र दिवालिया बनता है, वह नीति से कुचित दृष्टि वाली है, और उसका अर्थशास्त्र झूठा अर्थशास्त्र है।

एक अध्यापक' "

यह लेख एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के एक अध्यापक का है। लेख के साथ जो चिट्ठी आई है, उसपर हस्ताक्षर है। लेकिन इस लेख के नीचे उन्होंने अपना नाम नही दिया है, इसलिए मै भी उनका नाम प्रकट नही कर रहा हूँ। पाठको को लेख से मतलब है, उसके लेखक से नही। यह लेख इस बात का एक ज्वलन्त उदाहरण है, कि जो कल्पनाये मनुष्य के मन मे गहरी जड जमा लेती है, उनसे उसकी दृष्टि कैसी धुँधली पड़ जाती है। प्रस्तुत लेखक ने मेरी योजना को समझने का कष्ट नही उठाया। मेरी कल्पना के मदरसे के विद्यार्थियों की तुलना उन्होने लका के चाय के बगीचो वाले उन लडकों से की है, जो आधों-आध गुलामी में रहते हैं। ऐसा करके उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन ही किया है। वे भूल जाते हैं कि बगीचो में काम करनेवाले लडकों को कोई विद्यार्थी नहीं समझता। उन्हे जो मजदूरी मिलती है वह उनकी शिक्षा का अंग नही होती। मै जिस प्रकार की पाठशालाओं की हिमायत कर रहा हूँ, उसमें तो लडके अग्रेजी छोड़कर वे सब विषय सीखेंगे, जो आज हाईस्कूलो मे सिखाये जाते है; उनके सिवा वे कवायद, सगीत, चित्रकला, और निस्सन्देह एकाध उद्योग या दस्तकारी भी सीखेंगे। इन मदरसों को कारखाने कहना यकीकत को समझने से इंकार करना है। यह तो वही मसल हुई कि किसी आदमी ने बन्दर को छोड और कोई प्राणी देखा ही न हो, और चूंकि मनुष्य का वर्णन, कुछ ही अशो में

क्यों न हो, बन्दर के वर्णन से मिलता-जुलता है इसलिये वह मनुष्य का वर्णन पढ़ने से ही इनकार कर दे ! मैंने अपनी सूचनाओ द्वारा जिन परिणामों का दावा किया है, अगर ये अध्यापक उनके खिलाफ जनता को चेतावनी देने, और कहते कि वैसे सब परिणाम पाने की वह आशा न रक्खे, तो उनके कथन मे कुछ तो भी तथ्य रहता, लेकिन ऐसी चेतावनी भी अनावश्यक होती, क्योंकि मै खुद उसे दे चुका हूँ ।

मै मानता हूँ कि मेरी सूचना नई है। लेकिन नवीनता कोई अपराध नही । मै यह भी मानता हूँ कि इसके पीछे विशेष अनुभव नही है । लेकिन मेरे साथियो को जो अनुभव प्राप्त हुए है, उनपर से मुझे यह अनुभव करने मे बल मिलता है, कि यदि इस योजना को निष्ठा के साथ कार्य मे परिणत किया जाय, तो यह जरूर सफल होगी । यदि यह प्रयोग असफल हो, तब भी इसकी आजमाईश कर लेने मे देश की कोई हानि न होगी । अगर यह प्रयोग कुछ अशो मे भी सफल हो जाय, तो इससे बहुत ज्यादा लाभ होगा । प्राथमिक शिक्षा को मुफ्त, लाजिमी और असरदार बनाने का कोई तरीका नही है । इसमे तो कोई शक नही कि आजकल की जो प्राइमरी तालीम है, वह एक फदा है—भ्रम है ।

श्री० नरहरी पारिख के आँकडे इसलिए लिखे गये थे कि इस योजना का जितना समर्थन उनसे हो सके वे करे । इन आँकडो से ही किसी अन्तिम निर्णय पर नही पहुँचा जा सकता, फिर भी इनसे प्रोत्साहन अवश्य मिलता है। उत्साही लोगो के लिए बहुत-सी तथ्य की बाते इनमे मिलती है । सात साल मेरी योजना के अविभाज्य अग नही है । हो सकता है, कि मैंने जिस बौद्धिक भूमिका की कल्पना की है, उस तक पहुँचने मे अधिक समय लगे । शिक्षा की अवधि को बढाने से राष्ट्र की कोई हानि न होगी । मेरी योजना के आवश्यक अग इस प्रकार है :—

१. कुल मिलाकर देखा जाय तो मालूम होता है कि किसी एक या अनेक उद्योगो की शिक्षा लड़को और लडकियों के सर्वतोमुखी विकास का अच्छे-से अच्छा साधन है। इसलिए सारी पढाई उद्योग की शिक्षा के आस-पास बैठाई जानी चाहिए ।

२. इस कल्पना के अनुसार जो प्राथमिक शिक्षा दी जायेगी, वह कुल मिलाकर अवश्य स्वावलम्बी होगी। हो सकता है कि पहले या दूसरे साल की पढाई तक यह शायद पूरी स्वावलम्बी न भी बने। यहाँ प्राथमिक शिक्षा से मतलब उस शिक्षा का है, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

इन अध्यापकजी को शक है कि उद्योग द्वारा गणित या दूसरे विषय कहाँ तक सिखाये जा सकेंगे? उनका यह शक अनुभव की कमी का सूचक है। लेकिन मैं तो अपनी बात अनुभव के बल से कह सकता हूँ। दक्षिण-आफ्रिका के टॉल्सटाय फार्म पर जिन लडको और लडकियो की शिक्षा के लिए मै प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार था, उनका सर्वांगीण विकास करने मे मुझे किसी कठिनाई का सामना नही करना पडा था। करीब आठ घटो का उद्योग ही वहाँ की शिक्षा का केद्र था। उन्हे अेक अथवा अधिक-से-अधिक दो घटे लिखने-पढने के मिलते थे। उद्योगो मे खोदना, रसोई बनाना पाखानो की सफाई करना, झाडना-बुहारना, चप्पल बनाना, बढईगिरी और चिठ्ठी-पत्री या सदेश लाने ले जाने का काम आदि का समावेश था। बालकों की उमर ६ से लेकर १६ वर्ष तक की थी। उसके बाद तो यह उद्योग बहुत ही फूला-फला है।

(हरिजन, २ अक्तूबर, १९३७)

कोरे विचार नहीं, ठोस कार्य

डॉ० एरडेल ने अपने एक लेख की नकल, जो 'ओरिएण्ट इलस्ट्रेटेड वीकली' मे छपनेवाला है, मेरे पास पेशगी भेजी है, और उसके साथ नीचे लिखा पत्र भेजा है।

"आपने यह इच्छा प्रकट की है, कि अब इस देश मे शिक्षा स्वावलम्बी बननी चाहिए, और इतने वर्षो से जैसी कृत्रिम रही है, वैसी अब न रहनी चाहिए।

मैंने हिन्दुस्तान मे, शिक्षा के क्षेत्र मे, तीस साल से भी अधिक काम किया है ! मेरा एक लेख 'ओरिएण्ट इलस्ट्रेटेड वीकली' मे छपने जा रहा है, उसी की एक प्रति आपकी सेवा मे भेज रहा हूँ। शायद इसमे कुछ ऐसे विचार हो, जो आपके विचारो से कुछ हदतक मिलते जुलते हो। मै निश्चय ही यह अनुभव करता हूँ कि शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना होनी चाहिये, और प्रत्येक राष्ट्रीय मत्री या मिनिस्टर को अपने-अपने प्रान्त मे उस योजना पर अमल कराने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिये। इस प्रश्न को कुछ-कुछ हल करने के लिए अलग अलग प्रयत्न तो बहुत-से हुए है। लेकिन मै समझता हू कि शिक्षा-सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्तो की तुरन्त ही घोषणा हो जानी चाहिये, जिससे सब प्रान्तो मे एक-ही-सा प्रयत्न हो· और सरकार और रिआया हिलमिलकर काम करे।"

इस लेख मे कुछ खास महत्त्व के और उपयोगी अवतरण मै नीचे देता हूँ। कार्य का श्रीगणेश कैसे किया जाय, इसकी चर्चा के बाद लेखक ने लिखा है

"राष्ट्रीय शिक्षा के मूल मे किस प्रकार के सिद्धान्त होने चाहिए, इसके विवेचन के लिए मेरे पास स्थान नही है। फिर भी, मै यह आशा रखता हूँ, कि लडको और लडकियो—दोनो की शिक्षा से हम धीरे-धीरे विद्यालय और कॉलेज के हास्यास्पद भेद को मिटा डालेगे। और हमारी समस्त शिक्षा का मुख्य मत्र होगा कुछ करना, करके दिखाना !

"विचार कितने ही क्यो न जागे, जबतक वे क्रियात्मक होकर फलप्रद नही होते, उनका कोई मूल्य नही माना जाता। यही बात भावनाओ और अनुभूतियो की शिक्षा के बारे मे कही जा सकती है। आजकल की शिक्षण-पद्धतियो मे इसकी बहुत ही उपेक्षा की गई है। जरूरत इस बात की है कि हिन्दुस्तान के नौजवान कर्मठ बने, और शिक्षा द्वारा उनका चरित्र ऐसा तैयार हो, कि उनमे कुछ काम करने की, कुछ व्यावहारिक कार्य सिद्ध कर दिखाने की, और कुछ सेवा करने की शक्ति पैदा हो। हिन्दुस्तान को ऐसे नौजवान नागरिको की जरूरत है, जो परिस्थितियो और सयोगो के कारण किसी भी क्षेत्र मे क्यो न पडे हो, वहाँ भी कुछ-न-कुछ अच्छे काम करके दिखा सके। शिक्षा या अध्ययन के प्रत्येक विषय का ध्येय सदाचार होना चाहिए। हमारे शिक्षको को सब विषयो की

शिक्षा ऐसे ही ढग से देनी चाहिये, जिससे विद्यार्थी के चारित्र्य का विकास हो। क्योकि व्यक्ति और राष्ट्र दोनो के लिए चारित्र्य ही जीवन का एकमात्र आधार है।

"जब एक बार सदाचार जागृत हो उठेगा, तो कुछ करने की सकल्प-शक्ति भी बलवान बनेगी और स्वावलम्बन तथा आत्मसमर्पण की दिशा में वह जोरो से काम करना शुरू कर देगी। तभी मनुष्य के अन्दर धरतीमाता के अधिक-से-अधिक निकट सम्पर्क मे आने की, खेती द्वारा उसे पूजने की, और सादगी तथा शुद्ध आचरण द्वारा उसपर कम-से-कम बोझ-रूप होने की, इच्छा पैदा होगी। मेरा तो निश्चित मत है कि धरती-माता के किसी भी बालक को ऐसा असमर्थ नहीं होना चाहिए कि वह सीधे उससे अपना पोषण ग्रहण न कर सके। इसलिए मैं शिक्षा मे प्रकृति या धरती के साथ के सीधे सम्बन्ध को कुछ हद तक जरूर दाखिल कराना चाहूँगा। शहरी मदरसे भी इसके अपवाद न रहेगे। शिक्षा की जिन रूढियो के कारण आजकल की शिक्षा एक बडी हद तक निरर्थक सी बन गई है, उनका हमें त्याग कर देना चाहिए। आज के शुभ अवसर पर, जबकि देश मे राष्ट्रीय यानी कॉग्रेसी मत्रि-मण्डल काम कर रहे है, हमे सच्ची शिक्षा-पद्धति का मगलाचरण कर देना चाहिए। यह नई शिक्षा निरी किताबी पढाई न होगी। हम पुराने जमाने की शिक्षा के सकुचित बन्धनो से जकडे हुए है; अतएव गाधीजी ने स्वावलम्बी शिक्षा की जो योजना सुझाई है, उसका मै हृदय से समर्थन करता हूँ। मुझे यह विश्वास नही होता कि उनकी बताई हुई हद तक हम जा सकेगे। उनकी इस बात से तो मै पूरी तरह सहमत हूँ, कि सात वर्ष की शिक्षा के बाद लडके को इस योग्य बनाकर निकलना चाहिए कि वह खुद अपनी जीविका कमा सके। मै तो यह भी अनुभव करता हूँ कि शिक्षा द्वारा प्रत्येक मनुष्य को अपने अन्दर रही हुई सृजन-शक्ति का बहुत-कुछ खयाल हो जाना चाहिए। क्योकि हरएक मनुष्य एक विकासमान ईश्वरीय अश है, और उस ईश्वर की जो परम शक्ति, अर्थात् पैदा करने की जो शक्ति है, वह उसमे भी मौजूद है। अगर उसमे यह शक्ति जागृत न हो, तो फिर शिक्षा किस काम की? उस दशा में वह कोरी पढाई तो कही जा सकती है, शिक्षा कदापि नही।

"दिमाग का सम्बन्ध जितना सिर से है, उतना ही हाथ से भी है। एक लम्बे अर्से से हमने मस्तिष्कगत बुद्धि को ईश्वर-रूप माना है। बुद्धि ने हमपर

अत्याचार किया है, अुसने जिधर हमे हाका है, हम अुधर ही हँक गये हैं। आज नई परिस्थिति उत्पन्न हुई है, उसमे इस बुद्धि का स्थान एक सेवक का स्थान होना चाहिए। और हमे सादगी को, प्रकृति के सादे सौदर्य को, हाथ के कलाकौशल को, अर्थात् कलाकार, कारीगर, किसान आदि के हाथ-पैरो के परिश्रम को उच्च और उन्नत मानना सीखना चाहिए।

"मै जानता हूँ कि अगर मुझे इस तरह की शिक्षा मिली होती, तो मेरा जीवन अधिक सुखी और अधिक शक्तिशाली बना होता।"

जो बात मै एक दुनियादार की हैसियत से अपने दुनियादार पाठको को कहता आया हूँ, वही डॉ० एरडेल ने एक शिक्षा-शास्त्री के नाते शिक्षा-शास्त्रियों को और जिनके हाथ मे आज देश के नौजवानो को बनाने-बिगाडने की सत्ता है, उनको लक्ष्य करके कही है। स्वावलम्बी शिक्षा के विचार के बारे मे उन्होने जैसी सावधानी से काम लिया है, उससे मुझे कोई आश्चर्य नही हुआ है। मेरी दृष्टि में तो वही खास चीज है। मुझे दुख केवल एक ही बात का है, कि जो चीज पिछले चालीस वर्षो से धुधली-धुधली-सी दिखाई देती थी, वही अब परिस्थिति के कारण दीपक की भाँति साफ साफ दिखाई देने लगी है।

१९२० मे मैने वर्तमान शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध कडी-से-कडी बाते कही थी। अब मुझे अवसर मिला है, कि इस बारे मे सात प्रातो के मन्त्रियों पर थोडा ही क्यो न हो लेकिन कुछ असर डाल सकता हूँ। अिन मन्त्रियो ने देश की स्वतन्त्रता के युद्ध मे मेरे साथ काम किया है, और मेरी ही तरह कष्ट सहे हैं। इसलिए इस बात को कि आजकल की शिक्षा-पद्धति सिर से पैर तक बहुत ही दूषित है, सिद्ध कर देने की ऐसी जोरदार इच्छा मन मे पैदा होती है, कि मै अुसे रोक नही सकता। और, जिस चीज को मै इस पत्र मे बहुत ही अपूर्ण सी भाषा में व्यक्त करने का यत्न कर रहा था, बिजली की चमक की भाँति मुझे अुसका दर्शन एकाएक हो गया है, और अब उस सत्य की प्रतीति मुझे प्रतिदिन अधिकाधिक होती जाती है। इसलिए देश के जिन शिक्षा-शास्त्रियो को अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नही करना है, और जिनके मन नये विचारो को ग्रहण करने के लिए तैयार है, उनसे मै यह कहने का साहस करता हूँ कि वे मेरी दोनों सूचनाओं पर

विचार करे, और प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध मे लम्बे अर्से मे जिन विचारो ने उनके अन्दर जड जमा ली है, उनको अपनी बुद्धि के स्वतन्त्र प्रवाह मे बाधक न होने दे। यह सोचकर कि मैं शिक्षा के शास्त्रीय और रूढिमान्य रूप से बिल्कुल ही अपरिचित हूँ, मै जो कुछ कहता या लिखता हूँ, उसके खिलाफ वे पहले ही से अपने विचारो को स्थिर न कर ले और बिना मेरी बातो पर पूरा विचार किये उन्हे ठुकराने की चेष्टा न करे। लोग कहते है, कि अकसर बालक के मुँह से भी ज्ञान की बाते प्रकट हो जाती है-- बालादपि सुभाषितम्। यह शायद कवि की अतिशयोक्ति हो, लेकिन इसमे तो कोई शक नही कि ज्ञान बालको के मुख से प्रकट होता है, और निष्णात या धुरधर विद्वान उसपर चमक चढाते है, और उसे शास्त्र-शुद्ध रूप देते है। इसलिये मेरा निवेदन है, कि वे मेरी सूचनाओ पर केवल गुण-दोष की दृष्टि से ही विचार करे। मै इन सूचनाओं को यहाँ फिर दोहराये देता हूँ। पहले इसी पत्र मे जिस रूप मे इन्हे दे चुका हूँ, उस रूप मे नही देता बल्कि इन पक्तियो को लिखाते समय जो भाषा मुझे सूझ रही है, उसी भाषा मे लिखाता हूँ।

१ आज प्राथमिक, मिडिल और हाईस्कूल की शिक्षा के नाम से जो शिक्षा प्रचलित है, उसका स्थान सात या सात से अधिक सालवाली प्राथमिक शिक्षा को ग्रहण करना चाहिये। इस शिक्षा मे अग्रेजी को छोडकर मैट्रिक तक के सब विषयो का और उनके अतिरिक्त एकाध उद्योग का ज्ञान दिया जाना चाहिये। ज्ञान के सभी क्षेत्रो मे और लडकियो के मन का विकास सिद्ध करने के लिए जरूरी है कि सारा ज्ञान किसी उद्योग के द्वारा ही दिया जाय।

२. कुल मिलाकर, मैं समझता हूँ कि इस तरह की शिक्षा स्वावलम्बी हो सकती है— होनी ही चाहिये— क्योकि असल मे स्वावलम्बन उसकी यथार्थता की कसौटी है।

(हरिजन, २ अक्तूबर, १९३७)

कुछ आलोचनाओं का उत्तर

सरकारी शिक्षा-विभाग के एक उच्च अधिकारी ने, जो अपना नाम प्रकट करना नही चाहते, प्राथमिक शिक्षा की मेरी योजना पर एक विस्तृत और विचार पूर्ण आलोचना लिखी है, जिसे उन्होंने हम दोनों के एक मित्र द्वारा मेरे पास भेजी है। स्थानाभाव के कारण उनकी सभी दलीलो को मै यहाँ नही दे सकूँगा उनमे कोई नई बात भी नही है, फिर भी चूँकि लेखक ने बहुत मेहनत के साथ अपना लेख तैयार किया है, इसलिये उसका जवाब देना उचित मालूम होता है।

मेरी सूचनाओ के आशय को लेखक ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है।

"१ प्राथमिक शिक्षा का आरभ और अन्त उद्योग-धधो से होना चाहिये और शुरू-शुरू में साधारण विषयो की शिक्षा गौण रूप से दी जानी चाहिये। वाचन और लेखन द्वारा इतिहास, भूगोल और गणित का जो नियमित शिक्षण दिया जाता है, उसका क्रम बिलकुल अन्त मे आना चाहिये।

"२. प्राथमिक शिक्षा आरम्भ ही से स्वावलम्बी होनी चाहिये। अगर सरकार स्कूलो से उनका तैयार माल खरीद लिया करे और जनता के हाथ उसे बेचे, तो स्कूल स्वावलम्बी बन सकते हैं।

"३ प्राथमिक शिक्षा मे मैट्रिक तक की पूरी पढाई का समावेश हो; अलबत्ता अँग्रेजी उसमे शामिल न की जाये। युवको और युवतियो से प्रायमरी स्कूलो मे अनिवार्य रूप से शिक्षक का काम लेने का विचार अध्यापक शाह ने सुझाया है, उसकी पूरी जाँच की जाये और सम्भव हो तो उसपर अमल भी किया जाये।"

इसके बाद लेखक तुरन्त ही कहने लगते है.

"यदि हम उक्त कार्यक्रम का विश्लेषण करके देखे, तो पता चलेगा कि उसकी तह मे कुछ तो मध्ययुग के विचार है, और कुछ दूसरे विचारो के गर्भ में

ऐसी मान्यता रही है, जो बारीकी से जाँच करने पर टिक नही सकती। ऊपरकी कलम नम्बर तीन मे पढाई का जो स्टैण्डर्ड सुझाया गया है, वह शायद बहुत ऊँचा कहा जा सकता है।"

अच्छा होता अगर मेरे लेखो का आशय देने के बदले लेखक मेरे शब्दो को ही उद्धृत करते; क्योकि पहली कलम मे मेरे आशय को समझाते हुए उन्होंने जो बाते कही है, उनमे से एक मे भी सचाई नही है। मैंने यह नही कहा कि शिक्षा का आरभ उद्योग से होना चाहिए और बाकी चीजे गौण रहनी चाहिए। बल्कि मैंने तो यह कहा है, कि सारी सर्व-साधारण शिक्षा उद्योग द्वारा दी जाये, और साथ-साथ वह आगे बढे। लेखक ने जो चीज मुझमे कहलवायी है, उससे यह बिल्कुल अलग चीज है। मध्ययुग में क्या होता था, मै नही जानता। लेकिन मैं इतना जरूर जानता हूँ कि क्या मध्ययुग मे, और क्या किसी दूसरे युग में उद्योग द्वारा मनुष्य के सर्वागीण विकास को सिद्ध करने का आदर्श कभी रक्खा नही गया था। यह विचार नया और मौलिक है। अगर यह झूठ भी साबित हो जाये, तब भी इसकी मौलिकता मे कोई फर्क नही पडता। फिर जबतक किसी मौलिक विचार को बडे पैमाने पर आजमाकर देखा न गया हो, उसपर सीधा हमला करना उचित नही : बिना आज़माये ही उसे असम्भव कह देना कोई दलील नही।

फिर मैंने यह भी नही कहा कि वाचन-लेखन द्वारा दी जानेवाली शिक्षा बिलकुल आरम्भ ही से शुरू होती है, क्योकि बालक के सर्वागीण विकास का वह एक अविभाज्य अग है। निस्सन्देह मैंने यह कहा है, और फिर कहता हूँ कि वाचन कुछ देर से शुरू किया जाये और लेखन उसके बाद। लेकिन यह सारा क्रम पहले साल मे अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिए। मतलब यह है, कि मेरी कल्पना की प्राथमिक पाठशाला मे आजकल की प्राथमिक पाठशालाओ की अपेक्षा बालको को एक साल के अन्दर जो सामान्य ज्ञान मिलेगा, वह पहले से कही अधिक होगा। मेरी पाठशाला का बालक शुद्ध-शुद्ध बोल और पढ सकेगा, और आजकल के बालक जैसे टेढे-मेढे अक्षर लिखते है, उनके मुकाबिले वह शुद्ध और सुन्दर लिखना जानेगा। साथ ही, पहले साल में वह सादा जोड़ बाकी और सादे पहाडे-पट्टी भी जान चुकेगा, और यह उस दस्तकारी के मारफत और उसके साथ-

साथ सीखेगा, जिसे वह खुद अपनी अिच्छा से चुनेगा। उदाहरण के लिए, मै मानता हूँ कि वह कताई के जरिये इन सब चीजो को सीख सकेगा।

दूसरी कलम मे दिया गया आशय भी पहली की तरह अपूर्ण है, क्योकि मैंने कहा तो यह है कि जो सात वर्ष मैंने सुझाये है उन सात वर्षो के अन्दर, उद्योग द्वारा दी जानेवाली शिक्षा स्वावलम्बी बननी चाहिए। मैंने साफ तौर से कहा है, कि पहले दो वर्षो में एक हद तक घटी भी हो सकती है।

सम्भव है, मध्ययुग खराब रहा हो, लेकिन महज इसलिए कि अेक चीज़ मध्ययुग की है, मै उसको त्याज्य ठहराने को तैयार नही। चर्खा अवश्य ही मध्ययुग की चीज है, लेकिन मै तो समझता हूँ कि वह सदा के लिए कायम रहेगा। चर्खा तो वही है, जो पहले था, लेकिन एक जमाने मे ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के बाद, जिस तरह वह गुलामी का प्रतीक बन गया था, उसी तरह अब स्वतन्त्रता और एकता का प्रतीक बना है। हमारे पुरखो ने सपने मे भी जिस अर्थ की कल्पना न की होगी, उससे कही गहरा और सच्चा अर्थ आजकल के हिन्दुस्तान को इस चर्खे से प्राप्त हुआ है। इसी तरह, दस्तकारी या हाथ के उद्योग-धन्धे किसी समय कारखानो की मज़दूरी के प्रतीक भले रहे हो, लेकिन अब वे पूरे-पूरे और सच्चे से सच्चे अर्थ मे शिक्षा के प्रतीक और उसके साधन बन सकते है। अगर कॉंग्रेसी मन्त्रियो मे पर्याप्त कल्पना-शक्ति और साहस होगा, तो वे इन विचारो की आजमाइश किये बिना न रहेगे : उन टीका और आलोचनाओं के रहते भी, जो शिक्षा-विभाग के बडे-बडे अधिकारी और दूसरे लोग सद्भाव के साथ करेंगे, और खासकर जब इस तरह की टीकाये कुछ काल्पनिक विश्वासो के आधार पर की जायेंगी।

इन लेखकने इस बात को मजूर तो किया ही है कि युवकों और युवतियों से अनिवार्य सेवा लेने की जो योजना अध्यापक शाह ने सुझाई है, वह अच्छी है। लेकिन बाद मे, मालूम होता है, उन्हे अपने इस कथन पर पछतावा हुआ है; क्योकि वे कहते है :

इस तरह शिक्षक के काम अनिवार्य बना देना हमारे खयाल से एक अत्याचार है। मदरसो में, जहाँ छोटे बालक पढने आते है, ऐसे ही स्त्री-पुरुष होने

चाहिए, जिन्होने इस धन्धे के पीछे ससार मे जितना स्वार्थ-त्याग हो सकता है उतना स्वार्थ त्याग करके अपना सारा जीवन इसीमे खर्च कर डाला हो, और जिनमे यह शक्ति हो कि स्कूलो मे उत्साह और उमग का वातावरण पैदा कर सके। हमने अपने युवको और युवतियो पर बहुत ज्यादा, शायद जरूरत से ज्यादा, प्रयोग किये है लेकिन इस नये प्रयोग के जो परिणाम हो सकते है, उनके कारण हम ऐसे गड्ढे मे गिर पडेगे कि फिर कम से कम पचास साल तक उसमे से उबरना सम्भव न रहेगा। इस सारी योजना के पीछे शायद यह कल्पना रही है कि अध्यापन की कला अेक ऐसी कला है, जिसके लिए पहले से किसी प्रकारकी तैयारी या तालीम की जरूरत नही, और शायद यह भी, कि हरएक मर्द औरत पैदाइशी शिक्षक और शिक्षिका होती है। समझ मे नही आता कि अध्यापक शाह जैसे विख्यात पुरुष ऐसे विचार क्यो रखते है ? ये विचार एक निरी धुन है कि जिसका अगर अमल किया गया, तो नतीजा बहुत ही बुरा होगा। फिर, यह कैसे हो सकता है कि हरएक आदमी बच्चो को उद्योग आदि की शिक्षा भी दे सके ?"

अध्यापक शाह अपनी बात का समर्थन करने और टीकाओं का उत्तर देने मे स्वय समर्थ है। लेकिन मै इन लेखक को यह याद दिलाना चाहता हूँ कि आजकल के शिक्षक कोई स्वयसेवक नही होते, वे तो अपनी जीविका के लिए काम करनेवाले चिट्ठी के चाकर या निरे नौकर होते है। अध्यापक शाह की योजना मे यह कल्पना तो रही ही है, कि अनिवार्य अध्यापन के लिए जिन स्त्री-पुरुषो को चुना जाये, उनमे पहले ही से स्वदेश-प्रेम, स्वार्थ-त्याग की भावना, कुछ अच्छे-अच्छे सस्कार और दस्तकारी का ज्ञान इतनी बाते अवश्य होनी चाहिए। उनकी यह कल्पना बहुत ही ठोस, बिलकुल सम्भाव्य और व्यावहारिक है, वह इस योग्य है कि उसपर पूरा-पूरा विचार किया जाय। अगर स्वयम्भू शिक्षकों के मिलने तक हमे राह देखनी हो, तब तो कयामत के दिन तक उनकी प्रतीक्षा करनी होगी ! मै यह कहना चाहता हूँ कि शिक्षको और शिक्षिकाओ को, जहाँ तक हो सके, कम से कम समय में और बडे पैमानेपर तालीम देकर तैयार करना होगा। जबतक आजकल के शिक्षित युवकों और युवतियो को समझा-बुझाकर उनकी सेवा इस काम के लिए प्राप्त न की जायगी, तबतक यह न हो सकेगा। इन लोगो की ओर से जबतक स्वेच्छायुक्त सहयोग न मिलेगा, सिद्धि इस काम से दूर ही रहेगी।

सत्याग्रह-युद्ध मे विद्यार्थियो ने, कितना ही कम क्यो न हो, मगर हिस्सा जरूर लिया था। अब, जबकि केवल अपने गुजारे-भर को वेतन लेकर रचनात्मक कार्य मे सहयोग देने की पुकार उठेगी, क्या वे जवाब देने से इनकार कर देगे ?

इसके बाद लेखक पूछते है

"१. क्या हमे इसका खयाल न रखना चाहिए कि जब छोटे बच्चे कच्चे माल का उपयोग करेगे तो उसमे बहुत-कुछ नुकसानी भी होगी ?

"२. जो कोई केन्द्रीय सस्था तैयार माल की बिक्री का प्रबन्ध करेगी, उसका खर्च कैसे चलेगा ?

"३. क्या जनता को बाध्य किया जायेगा कि वह इन नये भण्डारों से ही चीजे खरीदे ?

"४ जो पेशेवर लोग आज इस तरह की चीजे बनाते है, उनका क्या होगा ? उनपर इसका कैसा असर पडेगा ?"

मेरे जवाब इस प्रकार है :

१. बेशक कुछ नुकसानी तो होगी, लेकिन पहले साल के अन्त मे आशा है कि हरएक बालक कुछ मुनाफा करके दिखायेगा।

२. बहुतेरी चीजे तो सरकार अपनी जरूरतो के लिए खरीद लेगी।

३ राष्ट्र के बच्चो द्वारा बनाई हुई चीजे खरीदने के लिए किसी को बाध्य नही किया जायेगा, लेकिन यह आशा जरूर की जायेगी कि अपने बच्चों द्वारा बनाई गई चीजो को राष्ट्र अपने उपयोग के लिए बडे गर्व के साथ, देश-प्रेम की भावना से, और खुशी-खुशी खरीदेगा।

४ गाँवो में हाथ के उद्योगो द्वारा जो चीजें तैयार होगी, उनमे होड़ का प्रश्न क्वचित् ही उत्पन्न होगा। इस बात का ध्यान रक्खा जायेगा कि स्कूलो में ख़ास कर वे ही चीजें बताई जाये जो गाँवो में बननेवाली दूसरी चीजो के साथ अनुचित होड न करे। उदाहरण के लिए, आज गावो मे खादी, हाथ के बने कागज और ताड या खजूर के गुड का कोई हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी है ही नही !
(हरिजन, २ अक्तूबर, १९३७)

अनपढ़ बनाम पढ़े-लिखे

बम्बई से एक सज्जन लिखते हैं :

"कॉरपोरेशन को मौजूदा सरकार ने सलाह दी है कि वह अपने मताधिकारी के क्षेत्र को बढ़ावे। आज उन बालिगो को मत देने का हक है, जो हर महीने पाँच रुपया किराया देते हैं। सिफारिश यह की गई है, कि जो पढना-लिखना जानते है, उनको भी मताधिकार दिया जाय। अब प्रश्न यह है कि 'कॉन्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली' के लिए बालिगो को मताधिकार देने की शर्त है; ऐसी दशा मे यदि महासभा के सदस्य शिक्षितो के मताधिकार से ही सन्तुष्ट हो जाये, तो क्या इससे महासभा के सिद्धान्त का त्याग न होगा? मेरी तरह कुछ लोग ऐसे है जो मानते है कि इस समय शिक्षितो के मताधिकार तक ही बढने मे भलाई है। उनका क्या धर्म हो सकता है?"

जहाँ तक इस प्रश्न का सीधा सम्बन्ध कॉंग्रेस के अनुशासन से है वहाँ तक इस पर राय देने का मुझे कोई हक नही। हाँ एक पत्रकार के नाते मेरे किये हुए अर्थ को जो महत्व प्रश्नकर्ता देगे. उससे अधिक महत्व. म इसे न दूगा। इसके लिए तो, कॉंग्रेस के सभापति जो कहेगे, वही पर्याप्त और लाजिमी होगा। लेकिन एक पुराने अनुभवी के नाते इस सम्बन्ध मे अपनी जो राय मैं रखता हूँ उसे प्रश्नकर्ता के लिए और उनके जैसे दूसरे लोगो के लिए यहाँ देता हूँ। मैं मानता हूँ कि जिनमे कॉंग्रेस द्वारा सुझाये हुए सभी कामों को करने की ताकत नहीं है, या जो समझते है कि सब कामो के लिए यह अनुकूल नही है, वे महासभा की दिशा में चलते हुए जितना आगे बढ सके, नि.संकोच बढे। इस तरह आगे कदम बढ़ाना उनका धर्म है और इसमे किमी भी प्रकार से अनुशासन भग नही होता!

गुण-दोष की दृष्टि से सोचते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि मताधिकार के क्षेत्र को बढ़ाते समय उसे शिक्षितो तक ही मर्यादित रखना जरा भी उचित

नहीं है। हो सकता है कि २१ वर्ष का एक सुशिक्षित नौजवान बिलकुल ही मताधिकार के लायक न हो; जब कि ५० वर्ष का एक अनुभवी और दाना, लेकिन अनपढ़ मनुष्य मताधिकार के महत्त्व को समझता हो, और, यह भी सम्भव है कि उसके मत द्वारा, जो कुछ मिल सके, वह महत्त्पूर्ण हो। ऐसा प्रतिदिन हो भी रहा है। महासभा ने बालिग मताधिकार की जा हिमायत की है, उसमे भी कई बाते गर्भित हैं। मेरा दृढ विश्वास है कि बालिग होते हुए भी वे लोग मताधिकार का उपभोग नही कर सकते, जो बहरे, गूँगे, घोर अज्ञानी, पागल, गुप्त या खानगी रूप से अपराध करनेवाले और असाध्य रोगो से पीडित है।

फिर यह मान लेने की कोई वजह नही है कि जिन्होंने लिखने-पढ़ने की योग्यता प्राप्त की है, उन्होंने कोई खास पुरुषार्थ किया है। मै यह कहने को तैयार नही हूँ कि जो आजतक पढ नही सके, अपने अज्ञान के लिए वे स्वयं ही जिम्मेदार हैं। असल में तो इन करोडो के अज्ञान की जड मध्यम श्रेणी के लोगो की उपेक्षा में है। उन्होने आजतक अपने धर्म का पालन नही किया। इसीसे हिन्दुस्तान में अनपढों की सख्या बहुत ज्यादा रही है। इसलिए मेरी दृष्टि मे तो यह दुगुना दोष है, कि सरकार की कृपा से अबतक जो शिक्षा पा सके है, उनको तो मताधिकार दिया जाय और जो उसकी अकृपा से शिक्षा नही पा सके; उन्हे मताधिकार से वंचित रक्खा जाये! जिन अनपढों को मताधिकार दिया जायेगा उनको जल्दी से जल्दी पढाना सरकारी अधिकारियों का धर्म हो जायेगा। इससे एक ओर तो जिन्हे पहले से ही मताधिकार मिल जाना चाहिए था, उनको वह अधिकार न देने का प्रायश्चित हो जायेगा, और दूसरी ओर इस बात का प्रोत्साहन मिलेगा कि जिन्हें मताधिकार मिला है, उन्हे पढ़ा-लिखाकर इस योग्य बना दिया जाये कि वे अपने मत का अच्छी तरह उपयोग कर सके।

(हरिजन-बन्धु ३ अक्टूबर, १९३७)

प्राथमिक शिक्षक बनने के इच्छुकों से—

राष्ट्रीय शिक्षको को लक्ष्य करके मैंने जो लेख लिखा था, उसके उत्तर में, सन्तोष की बात है कि, मेरे पास हर रोज कई चिट्ठियाँ आने लगी है। इन चिट्ठियोपरसे मै यह देख रहा हूँ, कि लिखनेवालो ने मेरी प्रार्थना के मतलब को समझा नही है। ऐसे शिक्षको की जरूरत नही है जिन्हे किसी उपयोगी दस्तकारी के जरिये शिक्षा देने की बात मे पूरी पूरी श्रद्धा न हो, और जो इस काम को केवल प्रेम-पूर्वक और जीविका-निर्वाह के लिए आवश्यक-वेतन-मात्र लेकर करने को तैयार न हो। जो इस क्षेत्र मे आना चाहते है, उन सबको मेरी सलाह है कि वे कताई की कला को और उससे पहले सब क्रियाओ को अच्छी तरह सीख ले. उनमें निष्णात बन जाये। इस बीच जिनके नाम मेरे पास आयेगे, उन्हे मैं अपने पास नोट करके रक्खूँगा। मेरी योजना के अमल मे जो तरक्की होगी, उसकी सूचना इन पत्रलेखको के पास मेरी ओर से यथा-समय पहुँचती रहेगी। मेरी यह कोशिश उस माँग की पूर्ति के लिए है जो सात प्रान्तो की सरकारे मुझसे तब करेगी जब वे मेरी योजना को मानने और उसका प्रयोग करने को प्रेरित होगी।

(हरिजन ९ अक्टूबर, १९३७)

उद्योग द्वारा शिक्षा के समर्थन में

यद्यपि विनोबा और मै केवल पाँच मील के अन्तर पर रहते है, फिर भी चूंकि दोनो अपने-अपने काम मे लगे हुए है, और दोनो का स्वास्थ्य भी कुछ गिरा हुआ है, इसलिये हम क्वचित ही एक दूसरे से मिल पाते है। अतएव बहुत कुछ काम पत्र-व्यवहार से कर लेते है।

"आपके शिक्षा-विषयक ताजे विचार मुझे बहुत ही रुचे है। मेरे विचार इसी दिशा मे काम कर रहे है। 'उद्योग शिक्षण' इस तरह की द्वैत भाषा मुझे अच्छी ही नही लगती। मै तो 'उद्योग शिक्षण' के अद्वैती समीकरण मे विश्वास रखता हूँ। नि:सदेह मै यह मानता हूँ कि शिक्षा स्वावलम्बी हो सकती है। मै तो समझता हूँ कि जिसमे स्वावलम्बन नही, ग्रामो की दृष्टि से, उसे हम शिक्षा कह ही नहीं सकते। इस विषय मे आपके विचारो से मै पूरी तरह सहमत हूँ, इसलिए इसपर विशेष रूप से कुछ लिखने की इच्छा नही होती। हाँ, इसका प्रयोग करने की इच्छा होती है। कुछ किया भी है, और ईश्वर की मर्जी हुई तो इस विषय का अन्तिम निर्णय करने की भी आशा रखता हूँ।"

ये विचार विनोबा के ऐसे ही एक पत्र से मैंने लिये है। मेरी दृष्टि में इनका बहुत महत्व है, क्योकि इस दिशा में जो प्रयोग विनोबा ने किये हैं, उतने जहाँ तक मै जानता हूँ, मैंने या मेरे दूसरे साथियों मे से किसी ने नही किये है। तकली की गति मे जो क्रान्तिकारी वृद्धि हुई, उसकी जड़ मे विनोबा की प्रेरणा और उनका अकथ श्रम रहा है। बडी सस्था का सचालन करते हुए भी उन्होने आठ-आठ, दस-दस घटे चर्खे और तकली पर काम किया है; और शिक्षण मे इस उद्योग को उन्होने शुरू से महत्व का स्थान दिया है। अतएव जिसे मै अपनी मौलिक शोध मानता हूँ---मेरा मतलब उद्योग द्वारा स्वावलम्बी शिक्षा से है---उससे विनोबा सहज ही पूरी तरह सहमत है। यह चीज मेरे लिए तो बहुत ही उत्साह-वर्धक है। मैंने उनका यह मत इसलिए यहाँ दिया है कि जो विनोबा को पहचानते है, वे इससे अपनी श्रद्धा को बलवान बनायेगे, अथवा जिनमे श्रद्धा नहीं है, वे श्रद्धालु बनेगे।

श्री विनोबा का समर्थन मेरे लिए कोई नई बात नही है, और 'हरिजन-बन्धु' के पाठको को भी इसमे कोई नयापन नहीं मालूम होगा। लेकिन उनके समर्थन का न मिलना मेरे लिए बड़ी दुविधा की बात हो जाती है। जिस चीज को मै अपने पुराने से पुराने साथियो को न समझा सकूं, उसे जनता को समझाने की कोशिश, न सिर्फ मेरी मूर्खता, बल्कि धृष्टता भी समझी जायेगी। लेकिन श्री० मनु सूबेदार का जो नीचे लिखा पत्र मिला है, उससे मुझे अवश्य ही सानन्द आश्चर्य हुआ है। उनके साथ मै शिक्षा, शराब-बन्दी आदि विषयो के अपने विचारो के बारे में पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। नीचे का पत्र इसीका परिणाम है। इस पत्र को पढकर पाठक भी खुश होगे। इस पत्र के साथ उन्होने अंग्रेजी में कुछ सूचनाये भेजी थी, जिन्हे मै 'हरिजन' मे तो प्रकाशित कर चुका हूँ। वह लिखते है :

"मै यह सोच ही रहा था कि विद्यार्थी अपनी शिक्षा का बोझ किस हद तक खुद उठाये, कैसे उनका भविष्य उज्वल बने, उनके शरीर को व्यायाम मिले और उद्योग-प्रधान कामो से जो अनुशासन आदि पैदा होते है उनसे कैसे उनके मन का विकास हो, कि इतने मे मुझे खबर मिली कि आप शिक्षा-परिषद के अध्यक्ष बन रहे है। इसलिए मैंने सोचा कि इस सम्बन्ध के जो नोट्स मैंने तैयार किये है, उन्हे आपके पास भेज दू।

"गृह-उद्योग की और शाला-उद्योग की योजनाओ में कुछ भी फर्क नही है, अगर है तो केवल यही कि शाला-उद्योग के लिए कच्चे माल का प्रबन्ध करना ही होगा, जबकि गृह-उद्योग के लिए भी किया जाय तो अच्छा ही है। लेकिन यह हमेशा हो नही सकता।

"सम्भवत: सरकार को सब प्रकार के सांचे और हाथ के यन्त्र बनानेवाली संस्थायें खोलनी होगी क्योकि किफायत से काम लेने की जरूरत अभी वर्षों तक रहेगी। शायद इसके लिए जेलखानों का उपयोग किया जा सकेगा।

"शुरू में एक सामान्य योजना तैयार करके हरअेक शहर और जिले में भेजनी होगी, और तहसील से इस बात का पता लगाना होगा, कि वहाँ क्या-क्या सहूलियते है और किस प्रकार का कच्चा माल आसानी से बिल्कुल सस्ती कीमत मे मिलता है। शहरो में तो बहुत-सी सहूलियते मिल जायेंगी। गाँवो में क्या हो

सकता है, इसका विचार वे लोग करेगे, जो उनके विषय मे मुझसे ज्यादा जानते है।

"जिस गॉव मे स्कूल या मदरसे का नाम नही है, वहॉ के लिए तो यह बहुत ही आसान है कि शुरू से ऐसे शिक्षको को नियुक्त किया जाय, जो खुद काम कर सके और दूसरों से भी करवा सके। अगर शिक्षक ही कारीगर भी हो, और शिक्षा के साथ-साथ वे उद्योग-धन्धा भी सिखा सके, तो फिर क्या पूछना है ?

"जब शुरू मे आपने यह बात कही, तो बहुत दुष्कर मालूम हुई थी। लेकिन कुछ ही विचार करने पर अब यह प्रतीत होने लगा है कि उद्योग-धन्धो के बेकारी के और शिक्षा के इन तीन बडे सवालों को सगठन द्वारा किस प्रकार एक ही साथ हल किया जा सकता है। पिछली १८ तारीख के 'हरिजन' में एक अध्यापक का लेख पढकर मुझे कुछ ऐसा लगा कि शिक्षा मे भी 'वेस्टेड इण्टरेस्ट' यानी स्वार्थ-प्रेमियो का प्रभुत्व कायम हो गया है और यह जैसा कि आपने कहा है, उन भ्रमपूर्ण विचारो का परिणाम है, जो शुरू से कुछ लोगो के बन गये है। ज्ञानेश्वर महाराज ने कहा है कि तोता जिस सीक या डडी पर बैठता है, उसे खुद ही पकड़कर रखता है, और फिर कहता है मै तो बन्धन मे पडा हूँ !

"गरीब देश मे शिक्षा और उद्योग को एक-दूसरे से अलग रखना लाभ-दायक नही है। जब हमारी चादर छोटी है तो तन को अच्छी तरह ढकने के लिए हमे थोड़ा सिकुडकर सोना चाहिए। किफायत का मार्ग हमेशा तकलीफ का रहा है। विदेशी सरकार ने यह तकलीफ खुद नही उठाई, क्योकि उसके जैसा विदेशी ही यह कह सकता है कि अगर पैसे कम है तो शिक्षा भी कम दो। कॉग्रेस के राज्य मे तो जो जिस बोझ को उठा सकता है, वह बोझ उसे उठा लेना चाहिए। विद्यार्थी कितना बोझ उठा सकते है, इसकी ठीक-ठीक जॉच होने से पता चलेगा कि अगर सुव्यवस्था से काम चले, तो वे अपनी शिक्षा के खर्च में बहुत ज्यादा हाथ बँटा सकते है और उससे इतना कुछ सीख सकते है, कि बड़े होने पर अपनी जीविका खुद चला सकें।"

(हरिजन-बन्धु, १० अक्तूबर, १९३७)

५४

शराब-बन्दी और शिक्षा

श्रीयुत जे० जी० गिलसन क्रिश्चियन हाई एण्ड टेक्निकल स्कूल, बालासोर के मत्री और ए० बी० बी० ओ० मिशन के उद्योग, कला और धन्धो की शिक्षा के शिक्षाविभाग के सचालक है। गाँवो मे पानी, पाखाना, पेशाब आदि की व्यवस्था पर प्रकाश डालनेवाला कुछ साहित्य भेजते हुए वे लिखते है

"शिक्षा और शराब-बन्दी के बारे मे जो थोडी चर्चा पिछले कुछ महीने से 'हरिजन' मे छपने लगी है, उसपर टीका के रूप मे कुछ लिखने का मेरा इरादा है। यह चर्चा मुझे बहुत ही दिलचस्प और विचारो को जागृत करनेवाली मालूम होती है; और मेरा यह आग्रह है कि हमारे मदरसो के सभी शिक्षक इसे पढें और इसपर चर्चा करे। सब मिलाकर तो, मै आपके निर्णयो से बहुत-कुछ सहमत होता हूँ। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि आपने इस चीज को इतने सुस्पष्ट रूप मे प्रकट किया कि अगर शारीरिक श्रम समुचित रीति मे कराया जाये तो वह बौद्धिक विकास का एक अच्छे-से-अच्छा साधन हो सकता है। मैने देखा है, कि शिक्षको को यह समझाना बहुत ही कठिन है कि पाठ्य पुस्तको, भाषणो और परीक्षा के लिए रटी जानेवाली चीजो के सिवा भी दूसरे किसी साधन से बुद्धि का विकास हो सकता है। आपने इस चीज का जो विवेचन किया है, उससे सबको इससे स्पष्ट ज्ञान हो जाना चाहिए। हिन्दुस्तान की कुछ मिशनरी पाठशालाओ ने अपने यहाँ दस्तकारी की तालीम को दाखिल करके जो रास्ता दिखाया है, मुझे यह देखकर खुशी हुई, कि आपने उसकी कद्र की है।

"दूसरी ओर आप जो यह कहते है कि विद्यार्थियो के काम द्वारा शिक्षा को स्वावलबी बनाया जा सकता है या बनाना चाहिए, उससे मै सहमत नही हो सकता। यह हो कैसे सकता है, इसका कोई स्पष्टीकरण अबतक की चर्चा मे कही मेरे देखने मे नही आया। बालको के काम से आर्थिक लाभ की आशा नहीं रक्खी जा सकती। ससार के प्रत्येक देश में बालकों का शोषण करनेवाले लोग इसी तरह मुनाफा कमाते है, इसके लिए वे बालकों से प्राय: ऐसे ही काम

कराते है, जिन्हे फिर-फिर यत्र ही की तरह करना पडता है, और जिनमे कुशलता की बहुत ही कम जरूरत रहती है। अगर बालको से इस तरह का काम हर रोज चार घटे स्पर्धा-पूर्ण वातावरण मे कराया जाये, तो बालक न सिर्फ अपना खर्च निकालेगे, बल्कि जो लोग अुनके काम की निगरानी रक्खेगे, उनका खर्च भी निकालकर देगे। लेकिन शिक्षा की दृष्टि से ऐसे काम का कोई मूल्य न होगा। जिस तरह पाठ्य पुस्तको के रटने और भाषणो के सुनने मे बुद्धि मन्द हो जाती है, उसी तरह ऐसे कामो मे भी हो जायेगी।

"शिक्षा की दृष्टि से बालको के काम को उपयोगी बनाने के लिये आवश्यक है कि उन्हे तरह-तरह का काम दिया जाये और जब वे किसी एक को अच्छी तरह सीख ले, तो दूसरा नया काम उन्हे सीखने को दिया जाये। अपने विचारो के अनुसार प्रयोग करने का मौका और नई-नई डिजाइने तैयार करने की सधि उन्हे मिलनी चाहिए। अगर किसी ऐसे सुयोग्य व्यक्ति की निगरानी मे उनको इस तरह का काम करने का मौका दिया जाये, जो विचार-पूर्ण प्रश्न पूछकर और प्रोत्साहित करके अुन्हे हमेशा जागृत रक्खे, तो इससे बच्चो मे कई अच्छी आदते और शक्तियो का विकास हो सकता है। लेकिन मुझे यह सम्भव नही मालूम होता कि उनकी बनाई चीजो से स्कूल का खर्च निकल सकता है। हाँ, यह हो सकता है कि स्कूल के खर्च मे वे थोडी मदद पहुँचाये।

"लेकिन मेरी समझ मे नहीं आता कि हम क्यो ऐसी आशा रक्खे, कि पाठशालाये स्वावलम्बी बनें? बच्चो को शिक्षा देना और प्रौढ उमर मे बडो की शिक्षा को जारी रखना तो समाज का एक कर्त्तव्य है, और, मै तो यह महसूस करता हूँ कि हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत मे जनता के धन का सबसे बडा खर्च इसी काम के लिए होना चाहिए।

"मै देखता हूँ, कि इस चर्चा मे शराब-बन्दी और शिक्षा को एक साथ जोड दिया गया है, और दुःख की बात यह है कि अमेरिका की स्थिति को बिना समझे ही कुछ लोगो ने अमेरिका के प्रयोग की बात कही है। आपकी चर्चा मे यह मुद्दा काफी स्पष्टता के साथ रक्खा जा चुका है, कि शराब की दूषित आमदनी के सिवा दूसरे कई तरीको से भी शिक्षा के लिये धन मिल सकता है। जब अमेरिका का दृष्टान्त दिया जाता है, तो अुसके साथ यह भी कहना चाहिये कि वह

जितने दिन शराब-बन्दी का अमल रहा, शिक्षा के लिये कभी धनका अभाव नहीं पाया गया। बल्कि हकीकत यह रही कि इस समय के अन्दर वहाँ की पाठशालाओ मे बडे वेग से सुधार हुए। जन-साधारण की हालत को सुधारने में अमेरिका का शराब-बन्दी आन्दोलन कभी असफल नही हुआ। हाँ, बडे-बडे शहर भले ही इसके अपवाद रहे हों! क्योकि इन शहरों में अधिकतर आबादी उन लोगो की थी, जिनका जन्म यूरोप मे हुआ था, और उनका लोकमत शराब-बन्दी के कानून का अमल नहीं होने देता था। इन शहरों के बाहर अमेरिकन जनता का बहुत ही बडा हिस्सा शराब से दूर रहता है। और हिन्दुस्तान की तरह ही वहाँ भी शराब का पीना सामाजिक और नैतिक दृष्टि से लज्जाजनक माना जाता है। अथवा यों कहिये, कि सन् १९३३ तक तो जरूर ही माना जाता था। पिछले चार वर्षों मे इस दिशा मे जो अतिरेक हुआ है, उसके खिलाफ जनता के अन्दर सख्त नाराजी पैदा होने लगी है। अमेरिका मे राजनैतिक दृष्टिसे शराब-बन्दी की असफलता का एक कारण तो था, वहाँ के शहरो की राजनैतिक सत्ता, दूसरा कारण यह था कि शराब बनानेवाले लोग और शराबके व्यापार से लाभ उठानेवाले लोग, अखबारी 'प्रोपैगेण्डा' मे करोडो डालर खर्च करने को तैयार थे जबकि जन-साधारण, जिनकी दृष्टि मे इस प्रश्न का कोई महत्त्व न रहा था, इस ओर से बिलकुल ही उदासीन थे। शहर के धनवान लोग गाँवो को जिस तरह चूसते हैं, उसका यह एक उदाहरण है। हिन्दुस्तान मे भी शराब-बन्दी के आन्दोलन को सफल बनाने के पहले आपको इन्हीं समस्याओं का सामना करना पडेगा।

"मुझे यह जानकर दु ख होता है कि कुछ लोगो का यह खयाल हो गया है कि ईसाई लोग शराब-बन्दी के विरोधी हैं। श्री० फिलिप ने ऐसे खयालात की वजह समझाई है और कहा है कि इस देश में रोमन कैथलिको को छोडकर दूसरे बहुत-से ईसाई शराब-बन्दी के पक्ष मे है। उनके इस कथन मे मै इतना और जोड देना चाहता हूँ (और मै मानता हूँ कि वे इसे स्वीकार करेगे) कि हिन्दुस्तान में जो अमेरिकन पादरी आते हैं, वे प्राय निरापद रूप से ऐसे समाजों से आते हैं जिनमें मदिरा-सेवन बुरा माना जाता है। वे स्वयं कभी मदिरा का स्पर्श तक नहीं करते। मदिरा-त्याग का वे धार्मिक सिद्धान्त के रूप में उपदेश और प्रचार करते है; और अपने स्थापित गिरजाघरों मे जो लोग नये-नये ईसाई धर्म की दीक्षा लेने

उनके पास आते है, उनसे भी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा करवाते है। मै मानता हूँ कि जिन ईसाई-समाजो का ऐसे मिशनो के साथ सम्बन्ध है, वे शराब-बन्दी के अन्दोलन का अवश्य ही जोरदार समर्थन करेगे।

"सत्याग्रह आन्दोलन के दिनो मे अमेरिकन पादरियो ने कॉंग्रेस के शराब बन्दी आन्दोलन मे खुल्लमखुल्ला हाथ नही बँटाया था, इससे यह न समझा जाना चाहिए कि वे शराब-बन्दी के पक्ष ही मे न थे। इससे तो केवल यही सिद्ध होता है कि वे सत्याग्रह के पक्ष मे न थे, , अथवा उसमे शामिल होने को राजी न थे। मै समझता हूँ कि कानून से शराब-बन्दी करवाने का जो आन्दोलन इस समय चल रहा है, आप विश्वास रखिये कि उसमें अिन लोगो का हार्दिक सहयोग आपको मिलेगा।"

श्रीयुत गिलसन को उद्योग द्वारा दी जानेवाली उस शिक्षाके, जिसका लक्ष्य विद्यार्थी का मानसिक विकास भी है, पूरी तरह स्वावलबी होने मे जो शका है, उनका मुझे कोई आश्चर्य नही होता। इस प्रश्न की चर्चा मैने इसी अक के अेक दूसरे लेख मे की है। हाँ, अमेरिका की शराब-बन्दी के बारे मे श्री० गिलसन ने जो प्रमाण पेश किये है, पाठक उन्हें दिलचस्पी के साथ पढेंगे।

(हरिजन, १६ अक्तूबर, १९३७)

नई योजना

इस लेख मे 'सरकार' मे मतलब सात प्रान्तो मे कॉग्रेस की सरकार से है। लेकिन इससे वह समझने का कोई कारण नही है कि कॉग्रेस के सरकार बनने से जो मनोवृत्ति महासभावादी लोगो की कभी नही थी, वह एकाएक पैदा हो गई। यद्यपि कॉग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम सन् १९२० के महान् परिवर्त्तन के समय से ही जारी है, तो भी उसके बारे मे यह नही कहा जा सकता कि कॉग्रेसवालों मे उसके सम्बन्ध का जीवित वातावरण पैदा हो गया है। फिर, जो कॉग्रेस से बाहर है, उनका तो पूछना ही क्या? दूसरे, यद्यपि सहारक (अगर सहारक विशेषण का अहिसक रचना के सम्बन्ध मे प्रयोग करना अनुचित न हो तो) अथवा निषेधात्मक कार्यक्रम जितना लोकप्रिय हुआ, उतना रचानात्मक अथवा उत्पादक कार्यक्रम न हो सका, तो भी काग्रेस सन् १९२० मे उसको सहती अर्थात् मानती आई है। काग्रेस ने कभी उसको रद्द नही किया, और काग्रेस वालों ने भी उसे ठीक-ठीक सख्या मे अपना लिया है। इसलिए इस क्षेत्र में जो कुछ हो सका है, कॉग्रेसवादियो द्वारा ही हो सका है, और प्रगति की आशा भी वहीं की जा सकती है, जहाँ कॉग्रेस की सरकारे बनी है। लेकिन रचनात्मक कार्य मे श्रद्धा रखनेवाले लोग यह सोचकर कि अब तो हुकूमत कॉग्रेस के हाथ में है अपने प्रयत्नो को ढीला न करे, गफलत मे न रहे। कॉग्रेस की सरकार के होने से तो उनका धर्म यह हो गया है कि वे पहले से ज्यादा जागृत, ज्यादा उद्यमी और ज्यादा अध्ययनशील बने। जब ऐसा होगा, तभी जो आशाये कॉग्रेस सरकार से रक्खी गई है वे सफल होगी। कॉग्रेस-सरकार का अर्थ है, लोकमत के प्रति उत्तरदायी सरकार। अगर लोकमत इस सरकार को आज हटाना चाहे, तो हटा सकता है। लोकमत की इच्छा और सत्ता पर ही यह सरकार टिकी हुई है। इसलिए अगर महासभावाले चाहे, तो वे रचनात्मक कार्यक्रम को मन्जूर ही नही, बल्कि उसपर अमल भी करा सकते है। इसका यही एक रास्ता है। इस सरकार के पास कोई स्वतत्र शक्ति अर्थात् तलवार की शक्ति नही है। कॉग्रेस ने इसका सोच-समझकर त्याग किया है। यह शक्ति ब्रिटिश सरकार के पास है। जिस

दिन कॉंग्रेसी सरकार को ब्रिटिश हुकूमत का यानी तलवार के बल का उपयोग करना पडेगा, उस दिन समझिये कि तिरगे झडे का पतन हो गया, यानी कॉंग्रेसी सरकार मिट गई। लेकिन अगर लोग कॉंग्रेसी-सरकार की बात को न माने, अथवा उसमें अहिसा का प्रवेश न हो तो जो सरकार आज तेजस्वी दिखाई देती है, वह कल निस्तेज हो जायेगी।

इसलिए जिन कॉंग्रेसवादियो को रचनात्मक कार्य मे श्रद्धा है, वे होशियार हो जाये। मैने शिक्षा की जो योजना रक्खी है, वह भी रचनात्मक कार्य का एक बडा अग है। उसे जो रूप मे इस समय दे रहा हूँ, मेरे कहने का मतलब यह नही है, कि कॉंग्रेस ने उसको मजूर कर लिया है। लेकिन आज मै जो कुछ लिख रहा हूँ वह सन् १९२० से राष्ट्रीय शालाओ के विषय मे मैने जो कुछ कहा और लिखा है, इसकी जड मे छिपा ही हुआ था। मेरा यह दृढ विश्वास है, कि आज मौका मिलते ही यह चीज अिस तरह एकाएक प्रकट हो गई।

अब अगर प्राथमिक शिक्षा उद्योग द्वारा ही दी जाने को है तब तो इस समय यह काम उन्ही लोगो से हो सकता है, जिन्हे खासतौर पर चर्खे मे तथा दूसरे ग्राम-उद्योगो मे विश्वास है। क्योकि चर्खे का उद्योग ग्राम-उद्योगो में मुख्य है, और इस उद्योग के बारे मे चर्खा-संघ ने काफी जानकारी इकट्ठा कर रक्खी है। दूसरे उद्योगो के बारे में ग्राम-उद्योग-सघ जानकारी इकट्ठा कर रहा है। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि तत्काल जो भी रचना हो सकती है, वह चर्खे आदि के उद्योग द्वारा ही हो सकती है। लेकिन जिन्हे चर्खे मे श्रद्धा है वे सभी शिक्षक नही होते। हरएक बढ़ई बढईगिरी का उस्ताद या शास्त्री नही होता। जो उद्योग के शास्त्र को नही जानता, वह उद्योग द्वारा सामान्य शिक्षा नही दे सकता। इसलिए जिन्हे शिक्षा के शास्त्र से प्रेम है, और चर्खे वगैरा से दिलचस्पी है वे ही प्राथमिक शिक्षा मे मेरे सुझाये हुए ऋम को दाखिल कर सकेगे। इस विचार से कि ऐसे लोगों को थोडी सहायता मिलेगी मै नीचे श्री दिलखुश दीवानजी का वह पत्र दे रहा हूँ, जो उन्होने मेरे नाम भेजा है।

"स्वावलम्बन और उद्योग द्वारा शिक्षा के बारे मे 'हरिजन' और 'हरिजन-बंधु' में आप जिन सुन्दर विचारो और अनुभवो को प्रकाशित कर रहे है, उनसे मुझे अपने यहाँ के इसी दिशा के कार्य मे इतना प्रोत्साहन और उत्तेजन मिल रहा है, कि मै

यह पत्र लिखने के लिए मजबूर-सा हो गया हू, और आपकी समस्त योजना कितनी उपयुक्त है, इस बारे मे अपना उत्साह आपपर प्रकट करने के लोभ को रोक नही सक रहा हू । यह देखकर मुझे बडी खुशी होती है, कि दो साल से मै यहां जो छोटी-सी उद्योग-शाला चला रहा हूं, उसके अनुभव आपके विचारों से खूब मेल खाते हं । इसलिए आप जिन क्रान्तिकारी विचारो को व्यक्त कर रहे है, उनका मै सम्पूर्ण रूप से स्वागत करता हू, और उनसे अपनी पूरी-पूरी सहमति प्रकट करना चाहता हू । आप इस बात को समझ सकेगे कि यह सहमति या स्वीकृति मेरी अन्धश्रद्धा का परिणाम नही, बलिक अनुभवजन्य श्रद्धा की प्रतीक है । आप एक ऐसी शास्त्र-सम्मत और सम्पूर्ण योजना का विचार कर रहे हैं जो सारे देश के लिए उपयोगी हो सकेगी । मै यहा जो काम कर रहा हू, उसमे अभी पूर्णता और शास्त्रीयता की काफी गुजाइश है, और मै उसी दिशा मे यत्नशील भी हू । इस चीज को अधिक-से-अधिक पूर्ण बनाने मे हृदय बहुत ही आनन्द और उत्साह का अनुभव करता है । परन्तु इन दो साल से मुझे जो अनुभव हो रहे है, उनके बारे मे उत्पन्न होनेवाले प्रश्नो पर जिस प्रकार का चिन्तन, मनन और चर्चा आज चल रहा है, उसपर से मुझे आपके स्वावलम्बी और उद्योगी-शिक्षा के विचार बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होते है, और अनुभव से सिद्ध हो सकने योग्य दिखते हं । आपके विचारो और मुद्दो को मै जिस तरह समझ सका हू, उसके अनुसार मेरा भी यह अनुभव हो जाता है कि ·

"१ उद्योग को सभी प्रकार की शिक्षा का वाहन बनाने से सचमुच ही विद्यार्थी को सर्वोत्तम शिक्षा मिल जाती है । पुरुषार्थ और सदाचार के संस्कार इस उद्योगमयी शिक्षा के बहुमूल्य उपहार बन जाते है, अतएव हिन्दुस्तान-जैसे गरीब देश की शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की जो अनहदशक्ति इसमे पड़ी हुई है, उसके सिवा शुद्ध शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से भी उद्योग को वाहन बनाने से विद्यार्थियो का सर्वांगीण विकास बहुत सरल बन जाता है ।

"२ उद्योग को शिक्षा का माध्यम बनाने से प्राथमिक शिक्षा अवश्य ही और आसानी से स्वावलम्बी बन सकती है । हिन्दुस्तान-जैसे गरीब देश की शिक्षा का प्रश्न शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने से ही छूट सकता है । सिवा इसके, हमारी आर्य-सस्कृति के लिए भी यही पद्धति विशेष अनुकूल पड़ती है । मुझे

तो चर्खे का उद्योग बहुत रुच गया है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि यही सर्वव्यापक हो सकता है। इसलिये दो वर्षों के मेरे अनुभव मे चर्खे के उद्योग से जो आमदनी हुअी है, उसीके आकडे पडे हुए हैं। आपने जितना सोचा है, उतना व्यवस्थित रूप अभी मेरे शिक्षण कार्य को प्राप्त नही हुआ है अर्थात् उससे जो अनुभव हुए है, उनमे प्रगति के लिये अभी बहुत ही गुडजाश है। अगर आपकी आज्ञा हुई, तो ये आँकडे और इनके सम्बन्ध के अपने विचार मैं सेवा मे भेज दूँगा।

"३. अग्रेजी को छोड देने से और प्राथमिक शिक्षा को विशेष व्यापक दृष्टि से देखने से, उद्योग के लिये ज्यादा समय देते हुए भी, मुझे तो साफ-साफ दिखाई दे रहा है कि इस पद्धति द्वारा हम कुछ ही वर्षो मे अपने विद्यार्थियो का अधिक-से-अधिक विकास कर सकेगे। आजकल की शिक्षा से जुडे हुए पाण्डित्य, विद्वत्ता, कौशल्य आदि के भ्रम-पूर्ण विचारो को जब हम छोड देगे, तभी उद्योग द्वारा शिक्षा के गर्भ में रहे हुए सर्वतोमुखी शक्ति के विकास को हम पहिचान सकेंगे।

"४ पहली क्रांति यह होगी कि पाठशालाओ के कुल समय का तीन-चौथाई समय उद्योग को दिया जायेगा। उसके बाद शिक्षा की पद्धति में दूसरी क्राति यह करनी होगी कि वाचन, लेखन, समय-पत्रक परीक्षा और विषय-वार शिक्षा आदि के वर्तमान साधनो को दूर करके उद्योग द्वारा शिक्षा के लिये नीचे लिखे जो साधन बहुत ही उपयोगी और सरल सिद्ध हो रहे है, उनका प्रचार किया जाय।

"(अ) श्रुत-शिक्षण: पुस्तको पर आधार रखने के बदले अगर शिक्षक स्वय विद्यार्थियों के सामने सजीव पुस्तक बनकर बैठ जाय, तो चलते-फिरते, बातो-ही बातो से, लेकिन बडे व्यवस्थित रूप से और थोडे समय के अन्दर, विद्यार्थी इतना ज्ञान प्राप्त करते चलते है, कि शिक्षक के उत्साह और विद्यार्थियों की जिज्ञासा के परिणाम-स्वरूप उस सजीव पुस्तक मे रोज रोज नये-नये अध्यायो की वृद्धि होती हो जाती है। इस प्रकार के श्रुत शिक्षण से पुस्तको पर होनेवाले खर्च का लगभग लोप ही हो जाता है।

"(आ) शिक्षक का साहचर्य: उद्योग द्वारा शिक्षा का यह एक बिलकुल

अनिवार्य साधन है। जहा शिक्षक के हृदय मे विद्यार्थियो के लिये प्रेम और उत्साह उमडता रहता है, वहाँ यह साहचर्य बहुत ही सहज, (रसप्रद) और परस्पर विकास-साधक सिद्ध होता है। ऐसा शिक्षक, शिक्षक होते हुए भी सनातन विद्यार्थी रहता है।

"(इ) उद्योगो द्वारा राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलनो मे बराबर हाथ बँटाते रहने के कारण विद्यार्थी-वर्ग बचपन ही मे जन-समाज का अथवा सरकार की सहायता करने लगता है। लेकिन जैसा कि आपने लिखा है, अगर कोई कुशल और उत्साही शिक्षक जीवन के आरम्भ ही मे विद्यार्थियो को शराब-बन्दी, हरिजन-सेवा, और गाँवो की सफाई के कामो में बराबर शामिल होने का अवसर देता रहे, तो वह उन्हे सेवा की और समाज के परिचय की बहुत ही श्रेष्ठ, व्यावहारिक और सजीव शिक्षा देता है। उद्योगो द्वारा शिक्षा का हमारा यह नया साधन हमारी समस्त शिक्षा को अत्यन्त व्यावहारिक, सजीव और सफल बना देता है। इस बारे मे जितना ही अधिक सोचता हूँ, उतना ही मुझे अधिकाधिक स्पष्ट प्रतीत होता जाता है, कि स्वराज्य-सचालन की हमारी खादी, ग्रामोद्योग, शराब-बन्दी, हरिजन-सेवा, और गाँवो की सफाईवाली प्राण-पोषक प्रवृत्तियो के लिये उद्योग-प्रधान प्राथमिक पाठशालाये बहुत ही सहायक सिद्ध होगी; विद्यार्थी ही राष्ट्र का सच्चा निर्माण कर सकते है; इस सूत्र का नई योजना द्वारा कितना सुन्दर प्रयोग होनेवाला है!

"(ई) माता-पिता और गुरुजनो के साथ का अत्यन्त निकटवर्ती और अधिक सजीव सम्बन्ध हमारी नई प्राथमिक शिक्षा के लिये यह साधन बहुत ही शक्तिशाली सिद्ध होनेवाला है। आजकल की शिक्षा माता-पिताओं और विद्यार्थियो के बीच के अन्तर को बढाती रहती है। रजिस्टर पर सही करने और फीस देने के सिवा माँ-बाप को बच्चो की पढाई में और कोई दिलचस्पी नही होती। स्कूलों की पढ़ाई किताबी होती है, इससे विद्यार्थी गृह-जीवन की बातो से दूर-ही-दूर रहते है, और पारिवारिक प्रेम शिथिल हो जाता है। पुरानी वर्ण-व्यवस्था के कारण कृषि और उद्योग की परपरागत जजीर की जो कड़ियाँ परस्पर जुड़ी हुई थी, वे किताबी शिक्षा में इस तरह

उलझ और खो गई है, कि शुद्ध वर्ण-व्यवस्था का लोप हो रहा है। फलत: आज देश की खेती का और देहाती उद्योग-धन्धों का ह्रास हो रहा है। जब हमारी शिक्षा उद्योगमय होगी, तो उसका सम्बन्ध गाँवो के उद्योगो से अर्थात् माता-पिता के धन्धो से सीधा और घनिष्ट हो जायेगा। इसलिए माँ-बाप को उससे बडी दिलचस्पी हो जायेगी। उन्हे विश्वास रहेगा, कि उनके लडके-लडकी पढ-लिखकर निरुद्योगी नही, बल्कि घर के काम मे और घरेलू उद्योग-धन्धो मे सहायक होगे। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रश्न अधिक सरल हो जायेगा। उस दशा मे अनिवार्य शिक्षा के पीछे दण्ड या जुरमाने की ताकत नही रहेगी। बल्कि माता-पिता का उत्साह-पूर्ण सहयोग ही उसकी सच्ची ताकत होगी।

"(उ) यह बिलकुल ही उचित है कि आप प्राथमिक शिक्षा के विचार को व्यापक रूप देना चाहते हैं। मेरे पास गुजराती के चौथे दर्जे तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी आये है। उनका जो अनुभव मुझे हो रहा है, उससे पता चलता है कि चौथे दर्जे के बाद के देहाती छात्रो को सम्पूर्ण प्रश्न नवीन और क्रान्तिकारी उपायो की अपेक्षा रखता है। अनुभव यह हो रहा है कि चौथे दर्जे के बाद गाँवो के विद्यार्थी अग्रेजी के मोह के कारण शहरी मदरसो की तरफ ही ज्यादा खिचते है। शहर की शिक्षा खर्चीली होने से कइयों के लिए उसके दरवाजे बन्द रहते है। उनकी शिक्षा बीच ही मे रुक जाती है। जो लड़-झगड कर आगे बढते भी है, वे विलासी, और परोपजीवी शिक्षा पाकर अपने आपको, अपने माता-पिता को, और गाँवो के हित को नुकसान ही पहुँचाते है। यदि लोगो को गाँवों मे उद्योग-शालाये कायम करके पढाया जाय, तो इससे माता-पिता का, विद्यार्थियो का, और गाँवो का अपार लाभ हो सकता है। मेरा यह अनुभव बराबर दृढ़ होता जा रहा है, कि चार घण्टो के उद्योग और दो घण्टो की पढ़ाईवाले मदरसो मे विद्यार्थियों को बहुत आसानी से और बहुत ही थोडे समय में मैट्रिक तक का ज्ञान कराया जा सकता है।"

(हरिजन-बन्धु, १७ अक्तूबर, १९३७)

एक अध्यापक का समर्थन

"आपकी इस सूचना के साथ मै सहमत हूँ, कि बालक को कोई भी एक दस्तकारी शास्त्रीय और सस्कारी ढग से सिखाई जाये, और जिस क्षण से उसकी शिक्षा का आरम्भ हो, उसी क्षण से उसे कोई उपयोगी चीज पैदा करना या बनाना सिखाया जाये। मै इससे न केवल सहमत हूँ, बल्कि इसका साग्रह समर्थन भी करता हूँ। इसमे सन्देह नही कि यह एक क्रान्तिकारी सूचना है। फिर भी मै इससे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। सदाचार, सस्कार और आर्थिक लाभ की दृष्टि से व्यक्ति और राष्ट्र दोनो के लिए, इसका बहुत ज्यादा महत्त्व है। इससे बालक न केवल शरीर-श्रम के गौरव को समझेंगे, बल्कि उनमे स्वावलम्बन की भावना का विकास होगा, और वे जीवन मे सृजन की उपयुक्तता और उसके महत्त्व को ठीक ठीक समझ सकेंगे। हमारा ध्येय यह होना चाहिए कि बुद्धि, शरीर, नीति और उद्योग के मामलो मे बालक की जो आवश्यकतायें है, उनकी पूर्ति की जाये और उसकी शक्तियो का विकास किया जाये। उद्योग की इस शिक्षा में बालक को उत्पादन की सभी क्रियाओ के सर्व-सामान्य सिद्धान्त सिखाये जायेंगे, और साथ ही बालको अथवा नौजवानो को सब उद्योगों के सादे-से-सादे औजारो के उपयोग की व्यावहारिक शिक्षा भी मिलेगी। हमारा आदर्श यह होना चाहिए, कि हम अगली पीढ़ी के बालको को पढ़ाई के साथ-साथ ऐसे काम सिखायें, जिनमें कुछ-न-कुछ सृजन की आवश्यकता हो। इसका मतलब यह है कि साधारण शिक्षा के साथ शारीरिक काम को जोड दिया जाये; और इसका ध्येय यह है, कि बालक को उद्योग की उन सब शाखाओ का साधारण ज्ञान करा दिया जाये, जिनके साथ शारीरिक काम का सुमेल सिद्ध किया जा सके। बौद्धिक और नैतिक यत्नो के साथ जुड़े हुए इस शारीरिक श्रम को हमारी शिक्षा में मुख्य स्थान मिलना चाहिए, अर्थात् दिमाग का काम हाथ-पैर के काम से अलग न किया जाना चाहिए।

"प्राथमिक शिक्षा की अपनी पद्धति में हमें नीचे लिखे विषयो का समावेश करना चाहिए :

१. जन्मभाषा या मातृभाषा

२ अकगणित

३ प्राकृतिक विज्ञान

४ समाज-शास्त्र

५. भूगोल और इतिहास

६ शारीरिक श्रम का अथवा उद्योग-धन्धो का काम

७ कसरत

८ कला और सगीत

९. हिन्दुस्तानी

"अब सवाल होता है कि बालक की शिक्षा का आरम्भ किस उमर से किया जाय। यदि पाँच या छ वर्ष की उमर से शिक्षा का आरम्भ किया जाय, तो क्या इस उमर मे बच्चो को कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाई जा सकती है ? फिर इसके सिखाने मे जो खर्चा होगा, वह कहाँ से आयेगा ? यह चीज न साक्षरता के प्रचार से किसी कदर सरल होगी, और न कम खर्च या सस्ती ही। मै चाहूँगा कि आठ या दस वर्ष की उमर से दस्तकारी सिखाना शुरू किया जाय, क्योकि औजारो का उपयोग करने के लिए जरूरी है कि बालक के हाथ शक्तिशाली हो, तौल या दृढता से युक्त हो। लेकिन मै मानता हूँ कि प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ कम-से-कम पाँचवे या छठे वर्ष मे हो जाना चाहिए। इससे अधिक उमर तक बालक की शिक्षा को रोका नही जा सकता। हम जिस तरह का उद्योग बालको को सिखाना चाहते है, उसके सिवा उन्हे मैट्रिक तक की योग्यता करा देने के लिए हमारे पास दस साल का पाठचक्रम होना चाहिए। किन्तु इन बालको द्वारा—विशेषकर बहुत छोटी उमर के बालको द्वारा—बनाई गई चीजो के आर्थिक मूल्य के विषय मे मै अवश्य ही थोडा सशक हूँ। जिस देश मे व्यापार-विषयक कोई प्रतिबन्ध नही है, जहाँ रोज-रोज नई-नई फैशने निकलती है, और जहाँ बच्चों की बनाई हुई चीजे टिकाऊ अथवा सफाईदार नही होती, वहाँ उनका बिकना मुमकिन नही मालूम होता। अगर राज्य इन चीजो को खरीदता है, अथवा किसी प्रकार की सेवा या सहायता के बदले मे इन्हे लेता है, तो लेकर वह इन चीजो का क्या करेगा ? इससे अच्छा तो यह है कि राज्य सीधे तौर पर शिक्षा मे अपना पैसा खर्च करे। हाँ, बड़ी उम्र के, यानी १२ से १६ वर्ष के लड़के

बाजार मे बिकने योग्य चीजे बना सकते है और उनमे काफी आमदनी भी हो सकती है ।

"मै तो साक्षरता के प्रश्न का विचार दूसरे ढग मे करना चाहता हूँ, और यदि इसके लिए नये कर लगाने या खर्च बढ़ाने की जरूरत पडे, तो उसके लिए खुशी-खुशी तैयार हूं । उपयोगी दस्तकारी के विचार को प्राथमिक शिक्षा के ऊँचे दर्जो मे अथवा माध्यमिक शिक्षा मे ठीक-ठीक बढाया या विकसित किया जा सकता है । मै मानता हूँ कि दस्तकारी को कम-से-कम एक खास हद तक स्वावलम्बी बनाने का यत्न किया जाना चाहिए, और अनुभव-प्राप्ति के बाद, उत्पन्न की गई चीजो के मूल्य के आधार पर, जहाँ तक हो सके, उसे सम्पूर्ण रूप से स्वावलम्बी बनाना चाहिए । यहाँ केवल एक खतरे से हमे बचना होगा, और वह यह कि शरीर, मन और आत्मा के सस्कार की शिक्षा कही आर्थिक उद्देश्य और पाठशाला की आर्थिक व्यवस्था के सामने बिलकुल ही गौण न हो जाये ।

"आजकल के मैट्रिक के कोर्स से अग्रेजी को निकालकर प्राथमिक शिक्षा को मैट्रिक तक बढाने की आपकी सूचना भी मुझे मजूर है । मै तो चाहता हूँ कि उसमे हिन्दुस्तानी की शिक्षा को भी बढाया जाये । इसका अर्थ यह है कि आप प्राथमिक शिक्षा मे माध्यमिक शिक्षा का भी समावेश करते है । आपका इरादा स्कूल की पढाई को एक सम्पूर्ण घटक बना देने का है, और मै समझता हूँ कि यह घटक दस साल का हो सकता है । इसमे इतनी बात और बढ़ाना चाहूंगा कि यह सारी शिक्षा मातृभाषा छोड और किसी भाषा द्वारा न दी जाये । इससे बालक के मन का स्वतत्र निर्माण होगा, उसके मन में ज्ञान के और जीवन के प्रश्नो के विषय मे गहरी दिलचस्पी पैदा होगी, और उसके अन्दर सृजन की शक्ति और दृष्टि उत्पन्न होगी ।

"मै मजूर करता हूँ कि मध्ययुग मे शिक्षा अधिकतर स्वावलम्वी थी, और यदि हमारी सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक व्यवस्था और दृष्टि मध्ययुगीन ही रहे, तो आज भी साधारणतया हमारी शिक्षा जरूर ही स्वावलम्बी बनाई जा सकती है । मध्ययुगीन से मेरा मतलब है, वर्गो और वर्णों की अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था के पुराने और सकुचित विचारों से चिपटी रहनेवाली । लेकिन आज, जबकि हम पर प्रजातन्त्र, राष्ट्रवाद और समाजवाद की कल्पनायें

अपना प्रभाव डाल रही है, हमारी शिक्षा स्वावलम्बी नही बन सकती। शासन बल और साधन-सामग्री से सम्पन्न और सगठित जो एकमात्र शक्ति आज समाज के पास है, वह शासन या सरकार की शक्ति है। इसलिये इस काम का जिम्मा उसीको अपने सर लेना होगा। शक्ति के पुराने घटको या समूहो मे, यानी जातियो, वर्गो, सघो, पाठशालाओ, पचायतो, और धर्म-सघो आदि मे आजकल शक्ति का, शासन बल का, अथवा साधन-सामग्री का अभाव है, ओर पुराने जमाने मे जिस व्यापक अर्थ मे इसका अस्तित्व था, वह अब नही रह गया है। लोगो को भी अब इन पर कोई श्रद्धा नही रही। समाज की सारी शक्ति अब राजनैतिक समूहो के हाथ मे चली गई है। और हिन्दुस्तान मे भी राजनैतिक शक्ति ही आर्थिक और सामाजिक शक्ति बन गई है। इसलिये दो आदर्श— एक मध्ययुगीन और दूसरा अर्वाचीन— साथ-साथ नही चल सकते। पुराने समय मे न तो व्यापक शिक्षा थी, न प्रजासत्तात्मक शासन था और न सबको समान समझनेवाली राष्ट्रीय दृष्टि थी।

"शिक्षा के कार्य के लिये नवयुवको से अनिवार्य सेवा लेने का विचार अब कोई नया विचार नही रहा। लेकिन यह जरूरी है कि इसे कार्य-रूप मे परिणित किया जाय। कॉग्रेस और उसके प्रातीय मन्त्री अपने अधिकार-बल से देश के सुशिक्षित वर्गो से प्रार्थना करे, और उनको इस बात का न्योता दे, कि उनमे से जिन्हे सर्व-साधारण की शिक्षा से प्रेम है, उसके लिये दिल मे लगन है; वे सब जनता को साक्षर और सस्कारी बनाने मे और उसमे शिक्षा का प्रचार करने मे सरकार की सहायता करे। इससे सर्व-साधारण के साथ उनका नये ही प्रकार का सम्पर्क स्थापित होगा, और वह सम्पर्क केवल आर्थिक और राजनैतिक विषयो का ही न रहेगा, बल्कि उसके द्वारा जनता सामूहिक शक्ति और बुद्धि को जागृत करने, उसे सगठित और व्यवस्थित बनाने का हमारा उच्चतम हेतु भी सिद्ध होगा।"

जब मैने पहली बार स्वावलम्बी प्राथमिक शिक्षा के बारे मे लिखा था, तभी शिक्षा के क्षेत्र मे काम करनेवाले अपने साथियो से प्रार्थना की थी, कि वे उसपर अपनी सम्मति लिखकर भेजे। जिनकी सम्मतियाँ सबसे पहले आई उनमे हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री. पुन्ताबेकर भी थे। उन्होने लम्बा और दलीलो से भरा हुआ एक पत्र भेजा था। लेकिन स्थानाभाव के कारण मै उसे अबतक इस

पत्र मे दे न सका था। ऊपर मैंने उनके पत्र का प्रस्तुत अंश ही दिया है। सक्षेप की दृष्टि से साक्षरता और कॉलेज की शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले अंश छोड दिये है। क्योकि इस महीने की २२ वी और २३ वी तारीख को जो परिषद होनेवाली है, उसमे चर्चा का मुख्य विषय होगा— उद्योग द्वारा स्वावलम्बी प्राथमिक शिक्षा!

(हरिजन, अक्तूबर, १९३७)

अतीत का फल और भविष्य का बीजारोपण

आजकल की शिक्षा-प्रणाली की यह एक विचित्रता ही है कि सब कही उसीकी चाह होते हुए भी कोई उसका समर्थन नही करता। विद्यार्थी उसीकी तरफ दौडते है, माँ-बाप उसीको चाहते है, दानी धन उसीके प्रचार के लिये देते है, फिर भी अचरज यह है कि ये सब कहते है: 'इस शिक्षा मे कोई सार नही।' तब सवाल उठता है कि आखिर यह चलती कैसे है? इसे ऐसा कौनसा वरदान मिला है कि सबका आन्तरिक विरोध होते हुए भी यह बराबर बढती ही जा रही है। आमतौर पर माना यह जाता है कि 'राजा कालस्य कारणम्' के अनुसार सरकार की मान्यता ही इसे टिकाये हुए है लेकिन यह खयाल भी पूरी तरह सही नही मालूम होता। आज छोटे बडे सभी अधिकारी खुले दिल से इस शिक्षा की व्यर्थता की बाते करते है। फिर भी न जाने क्यो, कोई इसे छोडने को तैयार नही है?

तो इस शिक्षा-पद्धति का जीवनाधार क्या है? सचमुच यह एक पहेली ही है कि जिस शिक्षा के कारण बेकारी जरूर ही पल्ले पड़ती है, उसीके पीछे लोग इतने दीवाने क्यो है?

इसका एक कारण तो यह मालूम होता है कि इस पद्धति के जो छोटे मोटे लाभ है, उन्हे छोड़ने के लिये लोग तैयार नही। दूसरे, यह मालूम होता है कि

कदाचित् इस शिक्षा-प्रणाली की यान्त्रिकता मनुष्य के स्वभाव की जडता को प्रिय लगती है, अथवा इस शिक्षा के द्वारा जो जीविका और प्रतिष्ठा मिलती है, उसकी तह मे कोई ऐसा पाप छिपा हुआ है, जिसे छोडने का विचार तक मन मे नही आता ! अथवा, परिवर्तन के लिए सब तरह की अनुकूलता होते हुए भी सिर्फ हिम्मत की कमी के कारण परिवर्तन का आरम्भ नही होता।

जो लोग सामाजिक अन्यायो से लाभ अुठाते है उनकी एक विशेषता यह पाई जाती है, कि किसी दूषित प्रथा को सुधारने का उपाय जब उन्हे बताया जाता है, तो वे उस उपाय को अशत स्वीकार कर लेते है, और यो जाहिरा जनता के आसू पोछने का दिखावा करके अन्याय को जैसे का तैसा कायम रहने देते है। हमारी यह दूषित शिक्षा-प्रणाली अभी तक बदल नही रही है, इसकी वजह भी शायद यही है। अगर दोषो का असर अेक छोर पर पड गया है, और इलाज दूसरे छोर से किया जाता है, तो वह इलाज भी दूषित हो जाता है। इसलिए हर बात मे, हर चीज के, गुण और दोष दोनो देखने की जरूरत रहती है। यदि गलती करना और उससे होनेवाली हानि सहकर ही कुछ सीखना है, तब तो सोचने समझने की कोई जरूरत ही नही रहती। जड-जीवन मे कई परिवर्त्तन यो ही हो जाते है, लेकिन मनुष्य के जीवन का विकास सोच-समझकर और जान-बूझकर किये परिवर्त्तनो से ही होता है।

आजकल की शिक्षा-प्रणाली के दोषो को पहचानकर उन्हे सुधारने की कोशिश कई जगह हुअी है। शिक्षा-सुधार के नाम से और कही-कही राष्ट्रीय-शिक्षा के नाम से, कुछ छोटे-मोटे प्रयोग भी किये गये है। इन सब प्रयोगो की एक खूबी यह रही है कि साहस के साथ सुधार करते हुए भी किसी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के साथ पग-पग पर समझौता करने का इरादा रहता आया है, क्योकि इस राजमान्य शिक्षा-प्रणाली का सम्बन्ध जीविका मे है। फिर भी आश्चर्य इस बात का है कि इस प्रणाली का बड़ा-से-बडा दोष भी यही बताया जाता है कि इससे जीविका का यह सवाल ही हल नही होता !

अन्त मे, अब गाधीजी ने इस दिशा मे हिम्मत के साथ कदम बढाया है। जबसे वे हिन्दुस्थान आये है, तब से इस शिक्षा के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त करते रहे है। शिक्षा-सुधार के अनेक प्रयोगो को उनके आशीर्वाद और उनकी

सहायता मिली है । लेकिन इस तरह के प्रयोगो का सीधा बोझ उन्होने अबतक अपने ऊपर नही लिया था, और यही कारण था कि शिक्षा के विषय मे उन्होने अपनी कोई नीति (क्रीड) देश के सामने साफतौर मे नही रक्खी थी ।

आज जब कि हमारे देश की राजनैनिक परिस्थिति ने पल्टा खाया है, और कॉग्रेस ने देशके शासन की बागडोर को हाथ मे लेने का निश्चय किया है, गांधीजी ने भी शिक्षा के प्रश्न को फिर से अपने हाथ मे लिया है । अगर देश को सर्वनाश से बचना है, तो जरूरी है कि गरीब जनता के सिर पडे हुए आर्थिक बोझ को कम किया जाय । जिसे पेटभर खाने को नही मिलता, वह सरकार को पैसा कहा से दे व क्यो दे ? प्रिन्सिपल पराजपे ने असहयोग आदोलन के जमाने मे गाधीजी से कहा था कि अगर शराब-बंदी करोगे और आबकारी की आमदनी छोड बैठोगे, तो शिक्षा के लिए धन कहाँ मे पाओगे ? गाधीजी को उनकी यह बात बराबर खटकती रही है । उनका खयाल है कि शिक्षा के इस नशे को पिलाने के लिये हमें आम रिआया को शराब पिलानी पडती है, और उनके विचार मे, यह स्थिति असह्य है । अगर मजदूरो और किसानों को, हरिजनो और कारीगरों को शराब पिलाकर ही हम अपने मध्यवर्ग को सुशिक्षित और सुसंस्कृत बना सकते है, तो प्रश्न उठता है, कि ऐसी शिक्षा कहा तक हमारे काम की है ?

अगर शराब-बदी का कार्यक्रम सफल हुआ और आबकारी की आमदनी बद हो गई, तो फिर आमदनी का दूसरा रास्ता निकलने तक जरूरी होगा कि शिक्षा का काम किफायत से चलाया जाय । यह एक ऐसा उपाय है, जो हर किसी के ध्यान मे तुरन्त आ सकता है । लेकिन गाधीजी के सोचने का तरीका कुछ और ही है । वे हरएक सवाल की तह तक पहुंचकर उसपर विचार करते है । शराब-बदी के सिलसिले मे, शिक्षा के आर्थिक पहलू पर विचार करते हुए भी जब उपाय का प्रश्न सामने आया, तो शराब को और उससे होनेवाली आमदनी को भूलकर ही, बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से, उन्होने उसपर विचार किया ।

जो देश दूसरे देशो को लूटकर उनका धन अपने यहा लाना नही चाहता और अपने देश को दूसरो से लुटवाने का काम भी किसी गैर के हाथ मे सौपना नही चाहता, उस देश की शिक्षा-प्रणाली का स्वरूप स्वतन्त्र ही हो सकता है—होना चाहिये । जहाँ करोड़ों की सख्या मे बडो को और बच्चो को पढाना है,

वहाँ जरूरी है कि शिक्षा यथासम्भव स्वावलम्बी हो। लोगो पर कर का बोझ लादकर उसकी आमदनी से उनके बच्चो को मुफ्त मे पढाने से कही बेहतर है कि शिक्षा का बोझ शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी और उन विद्यार्थियो के शिक्षक मिलकर उठा ले। जो शिक्षक या अध्यापक अपनी गुजर-बसर के किए जितनी कम तनख्वाह लेता है, उतनी ही वह देश को आर्थिक सहायता पहुचाता है। इसी तरह अगर विद्यार्थी भी अपनी पढाई के दिनो में कोई उत्पादक काम कुशलता-पूर्वक करना सीख ले, तो वे भी अपनी शिक्षा के खर्च का बहुत-कुछ बोझ खुद उठा सकेगे। इस प्रकार गुरु और शिष्य दोनो मिलकर कम-से-कम शिक्षा के बारे मे तो सारे समाज को निर्भर और निश्चित कर सकेगे।

शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय, तो भी अब वह समय आ गया है, जब शिक्षा-प्रणाली मे व्यापक क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है। अबतक शिक्षा की जिस पद्धति का दौरदौरा रहा है, उसमे सारा जोर किताबी पढाई पर डाला जाता है और उसके जरिये दूसरो के अनुभवो, दूसरो की कल्पनाओ और दूसरो के तर्को को रटाने की रीति ही प्रचलित है। इसमे मानवजीवन का और उसकी परिस्थितियो का कोई ध्यान नही रक्खा जाता। इने-गिने वैज्ञानिको ने भले ही कुछ अद्भुत आविष्कार किये हो, लेकिन सर्वसाधारण की शिक्षा का आधार तो किताबे ही रही है। जिस अवस्था मे बालको की सब शक्तियो का विकास होता है, सदाचार की नीव डाली जाती है, उसी अवस्था में परावलम्बी और पराश्रित शिक्षा प्राप्त करने से आज राष्ट्र की कितनी हानि हो रही है, इसका कोई विचार नही करता।

निजी प्रयोगो की और मेहनत-मजदूरी करके जीवन मे उद्योग को प्रधान स्थान देने की बात तो समाज ने मान ली, लेकिन शिक्षा का आधार वही पुराना तरीका बना रहा, जिसमे कई-कई विषयो के अध्ययन को दृष्टि के सामने रखकर सिर्फ किताबें-ही-किताबे पढाई जाती है। शिक्षा मे उद्योग को स्थान देने की बात बहुत पहले सर्व-सम्मत हो चुकी है। इस कथन मे भी अब कोई नवीनता नही रही, कि शिक्षा का आधार निरीक्षण और परीक्षण ही होना चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय जीवन की समग्र और महान् प्रवृत्ति का एक हिस्सा बनकर, उसी राष्ट्रीय जीवन के लिए किसी उत्पादक उद्योग या व्यवसाय द्वारा सारी शिक्षा प्राप्त करने

का विचार, एक बिलकुल नया विचार है। इस पद्धति मे उद्योग या व्यवसाय शिक्षा का एक विषय न रहकर सम्पूर्ण शिक्षा का एक प्रधान माध्यम या वाहन बन जाता है, और उसीके द्वारा शिक्षा का खर्च निकालने की जिम्मेदारी आ जाने से उद्योग निरा खेल नही रह जाता, बल्कि एक पारमार्थिक और वास्तविक तथ्य बन जाता है। उद्योग का वह रूप ऐसा है कि इसके द्वारा एक नई अहिसात्मक सस्कृति की नीव डाली जा सकती है, और इस तरह शिक्षा मे उद्योग की यह दृष्टि निश्चय ही एक नई दृष्टि सिद्ध होती है।

मै मानता हूँ, कि यदि पूरी-पूरी श्रद्धा के साथ गाधीजी की इस शिक्षा पद्धति का प्रयोग किया जाय, और उसे पूरा-पूरा मौका दिया जाय, तो आशा है कि एक या दो पीढियो के अन्दर ही हमारे समाज की सारी सूरत ही बदल जायेगी।

अब हम यह देखे कि गाधीजी की इस योजना में किन-किन तत्त्वों का समावेश हुआ है।

१. जबतक अपने देश की शिक्षा-प्रणाली पर हमारा कोई अकुश या अधिकार न था, तबतक राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ वह शिक्षा ही हो सकता था, जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध न हो। देश के नेता राष्ट्र के हित के लिए जिस शिक्षा-पद्धति को अच्छी समझते थे, वही राष्ट्रीय शिक्षा थी। इस राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का निश्चय तीन दृष्टियो से किया जा सकता था। (१) राष्ट्र की ऐतिहासिक परम्परा; (२) राष्ट्रीय जीवन के वर्त्तमान आदर्श, (३) राष्ट्र की वर्त्तमान आवश्यकताये।

२. राष्ट्रीय दृष्टि को सामने रखकर इस प्रकार की शिक्षा के प्रयोग हमारे देश मे पिछले ५० वर्षों से होते आये है। करीब-करीब सभी प्रातो मे इस प्रकार के प्रयोग हुए है। असहयोग के जमाने में गुजरात, बिहार, सयुक्त प्रात आदि प्रातों मे राष्ट्रीय विद्यापीठ भी कायम हुए। ये संस्थाये राष्ट्रीय दृष्टि से और राष्ट्रीय सगठन की शक्ति से चलती थी, और मानना होगा कि देश ने इनके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे, बहुत-कुछ अनुभव भी प्राप्त किया। इन सस्थाओं के प्रयत्नों और प्रयोगों के फल-स्वरूप भविष्य के कार्य की दिशा भी कुछ-कुछ स्पष्ट हो गई। इन प्रयोगो के परिणाम स्वरूप जनता के सामने शिक्षा के क्षेत्र में जो आदर्श न्यूना-

धिक स्पष्टता के साथ रक्खे गये है, और जिनमे से बहुतो को समाज ने स्वीकार भी किया है, उनमे से कुछ इस प्रकार है.

शिक्षा मे मातृभाषा की प्रधानता हो। अन्तर्प्रान्तीय विचार-विनिमय और सगठन के लिए अपने देश की एक राष्ट्रभाषा हो, और वह हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो। शिक्षा मे अस्पृश्यता को कही भी स्थान न दिया जाय। प्राथमिक शिक्षा सब जगह मुफ्त हो। शिक्षा मे शहर की अपेक्षा ग्रामीण सस्कृति की प्रधानता हो। देश मे अग्रेजी कही भी शिक्षा का माध्यम न हो, और जो बिना अग्रेजी के अपनी शिक्षा पूरी करना चाहे, उनपर अग्रेजी कभी न लादी जाय। इतिहास, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र आदि सास्कृतिक विषय भारत के इतिहास-सिद्ध सर्वोच्च आदर्श की दृष्टि से सिखाये जाये। शिक्षा का आदर्श केवल धन-प्राप्ति या प्रतिष्ठा-प्राप्ति न हो। समाज-सेवा ही उसका आदर्श रहे, और सादगी, लोक-सेवा सर्व-धर्म-प्रेम भाव और उच्च चारित्र्य की उसमे प्रधानता रहे।

३ इसके साथ ही इस क्षेत्र मे जो दूसरी बडी विचार-क्रांति हुई वह यह थी कि शिक्षा मे भाषा और साहित्य को जो प्रधानता प्राप्त है, उसे कम करके निरीक्षण-परीक्षण, प्रयोग और कला-कौशल या उद्योग-धन्धो को ही शिक्षा का प्रधान साधन अथवा वाहन बनाया जाय।

इसी विचार को लेकर इस बार गाधीजी शिक्षा के नवीन युग का प्रारम्भ करने के लिए सारे देश को आमन्त्रित कर रहे है। उनका यह विचार पिछले ५० वर्षो के राष्ट्रीय प्रयोगो का परिपक्व फल और भविष्य के राष्ट्रव्यापी प्रयत्न का मूल बीज है।

इसके अनुसार अब हमारी राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ होगा. राष्ट्र के हित के लिए, राष्ट्र की इच्छा से होनेवाले राष्ट्रव्यापी प्रयत्न। अबतक के जो प्रयत्न इस दिशा मे हुए, वे केवल प्रयोग-रूप थे और इसीलिए ऐसे प्रयोगो पर जिनका विश्वास था, उन्ही लोगो के हाथ में उनकी बागडोर थी। अब यह कोशिश है कि यह नया प्रयत्न एक स्वतन्त्र प्रयत्न हो, और इसके प्रयोग मे सबको पूरी-पूरी स्वतन्त्रता देते हुए भी, इसका वही रूप अमल मे लाया जाय जो राष्ट्रीय महासभा को, यानी देश की जागृत जनता को मन्जूर हो।

वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली मे हमे जितने भी परिवर्तन करने है, सो सब आमूलाग्र करने होगे। समाज-हितैषी देशसेवक जिस पद्धति को स्वीकार करेगे, शिक्षा की वही पद्धति अमल मे आयेगी। परन्तु इस समय तो गाधीजी ने केवल प्राथमिक शिक्षा का ही प्रश्न अपने हाथ मे लिया है, और उसीपर वे देश के सारे विचारो और शक्तियो को केद्रित करना चाहते है। जिस ग्रामीण जनता की अबतक केवल उपेक्षा ही हुई है और जिसके अन्दर भूख की ज्वाला सदा धधकती रही है, गाधीजी चाहते है कि उस जनता को जल्दी से जल्दी फायदा पहुँचाये। क्योकि दमकलो को वही दौडाने की जरूरत रहती है, जहाँ आग लगी हो।

जो लोग यह समझते है कि शराब-बन्दी के प्रश्न को हल करने के लिए ही गाधीजी ने शिक्षा की यह योजना तैयार की है, वे भूल जाते है कि पिछले २०-२५ वर्षो मे राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र मे जितने प्रयत्न हमारे यहाँ हुए है अथवा आज भी हो रहे है, किसी न किसी रूप मे गाधीजी ने उन सबकी सहायता की है। फिर भले वह श्रद्धानन्दजी का गुरुकुल हो, कर्वे का महिला विद्यापीठ हो, अथवा कवीन्द्र ठाकुर की विश्वभारती हो। जामिया मिल्लिया इस्लामिया और बाकी के राष्ट्रीय विद्यापीठो का तो प्रश्न ही क्या? उच्च शिक्षा और शिक्षा मे अनुसधान (रिसर्च) की दिशा मे भी गाधीजी ने कुछ कम काम नही किया है। फिर भी चूँकि देश की गरीब जनता ही विशेषरूप मे उनकी चिन्ता का केन्द्र रही है, इसलिए गाँववालो की शिक्षा की ही इस समय उन्हे सबसे ज्यादा फिक्र है।

जब काँग्रेस ने सात प्रान्तो में अधिकार ग्रहण किया, और मन्त्रियों एवं नेताओ के सामने शराब-बन्दी और व्यापक शिक्षा की विषम समस्या उपस्थित हुई तब गाधीजी ने उनके सामने और देश के सामने अपनी वह योजना पेश की, जो चालीस वर्षों के उनके अनुभव का निचोड कही जा सकती है। जिस श्रद्धा से देश-सेवको ने और राष्ट्रीय-शिक्षा के प्रयाग-वारो ने आज तक इस दिशा मे प्रयत्न किये है, उसी श्रद्धा से गाधीजी ने अपनी यह योजना देश के सामने रक्खी है। जिन सरकारी शिक्षा के दोषो पर आज तक हम प्रहार करते आये, उन्ही दोषो को अब हम कैसे सह सकते है? उच्च और माध्यमिक शिक्षा, जो अधिकाश मे शहरों तक ही सीमित है, अपने सुधार के लिए अभी कुछ समय और ठहर सकती है। उसके लिए हमें पहले लोकमत को केन्द्रित करना पडेगा। लेकिन प्राथमिक शिक्षा

की निरुपयोगिता तो अब इस हद तक सिद्ध हो चुकी है कि उसमे दो मत हो नही सकते । देश के अधिकाश गॉव ऐसे है, जहाँ अच्छी या बुरी किसी भी प्रकार की शिक्षा का अस्तित्व नही है । जिन गाँवो मे प्राथमिक पाठशालाये है, वहाँ भी वे अपनी उपयोगिता सिद्ध नही कर सकी; उनसे कोई लाभ नही हो सका । इसलिये गाधीजी ने गाँवो की शिक्षा के सवाल को ही प्रधानता दी है, और उसी पर राष्ट्र के प्रयत्नो को वे केद्रित कर रहे है । उनके विचार मे शिक्षा की यह योजना उनकी आज तक की समस्त सेवा का सत्त्व है । उनका विश्वास है कि अहिसा के सिद्धान्त का उत्कृष्ट प्रयोग इस योजना द्वारा ही किया जा सकेगा ।

स्थूल रूप मे उनकी योजना की रूप-रेखा इस प्रकार है:—

१ किसी न किसी राष्ट्रोपयोगी उद्योग को केद्र मे रखकर ही सारी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय ।

२ प्राथमिक शिक्षा को ही राष्ट्र की सर्व-सामान्य और सम्पूर्ण शिक्षा का रूप दिया जाय ।

३. विद्यार्थियो के उद्योग से शिक्षको के वेतन का खर्च निकालने का प्रयत्न किया जाय, अर्थात् उद्योग द्वारा अपनी पढाई की गुरु-दक्षिणा देने का मार्ग राष्ट्र के युवको और युवतियो को सुझाया जाय ।

४ प्राथमिक शिक्षा का माध्यम शुरू से आखिर तक विद्यार्थी की मातृ-भाषा या प्रान्तीय भाषा ही रहे । इस प्राथमिक शिक्षा में अंग्रेजी को कही भी स्थान न दिया जाय।

५ प्राथमिक शिक्षा के अन्त मे राष्ट्र-भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी नागरी या उर्दू लिपि के द्वारा अनिवार्य रूप से पढाई जाय ।

६ यदि पाठशाला मे बननेवाली चीजे स्थानीय बाजार मे न बिक सकें, तो उन्हे उचित कीमत देकर खरीद लेने की जिम्मेदारी सरकार की मानी जाय ।

७ सरकार की दूसरी जिम्मेदारी यह हो कि जो नवयवक प्राथमिक शिक्षा पूरी करके निकले उन्हे कम से कम १५ रु मासिक का काम दे ।

गाधीजी की यह योजना इन सात सिद्धान्तो पर निर्भर है । अपनी इस योजना की चर्चा वे देश के शिक्षा-प्रेमी सज्जनो के साथ करना चाहते थे ।

मध्यप्रान्त और बरार के शिक्षा-मन्त्री और शिक्षा-विभाग के अधिकारियो के साथ वे इस विषय पर विचार-विनिमय कर ही रहे थे, कि इतने मे मारवाडी-शिक्षा मडल की रजत-जयन्ती का आयोजन नवभारत विद्यालय, वर्धा द्वारा आरभ हुआ और इसी सिलसिले मे अखिल भारत शिक्षा-परिपद् का विचार भी परिपक्व हो गया।

इस परिषद् का रूप जान-बूझ कर छोटा और अवैध रक्खा गया। परिषद् मे प्रधानतया वही लोग बुलाये गये, जिन्हे या तो राष्ट्रीय शिक्षा का अनुभव था, या गाधीजी की नई योजना मे खास दिलचस्पी थी। इस तरह परिषद् का उद्देश्य परिमित होने के कारण, और गाधीजी की अस्वस्थता के कारण, इस परिषद् मे सब किसीको बुलाया नही जा सका।

शिक्षा के नव-विधान पर सोचनेवाले कॉंग्रेसी शिक्षा-मत्रियो को इस परिषद् मे विशेष रूप से आमत्रित किया गया था। मत्रियो मे सीमाप्रात के मत्री की और मद्रास के प्रधान मत्री श्री राजगोपालाचार्य की अनुपस्थिति खटकती थी। गाधीजी इस परिपद् के अध्यक्ष थे और सौ० सादामिनी मेहता के शब्दो मे परिषद की सारी कार्रवाई एक पारिवारिक जलसे की भाति अतिशय शात और स्निग्ध वातावरण मे हुई थी। इसका यह मतलब नही, कि परिषद् मे मतभेद, सिद्धान्त-भेद और शकाये पैदा ही न हुई। परिषद् ने और उसकी विषय-विचारणी सभा ने दो दिन मे जिन प्रश्नो पर विचार किया, वे इस प्रकार थे

१ इस शिक्षा-प्रणाली का अहिसा के साथ अविभाज्य सबन्ध है या नही?

२ यत्र-युग के इस जमाने मे हाथ की कारीगरी को प्रधानता देने मे कुछ भूल तो नही हो रही है?

३ गाधीजी की यह योजना एकदम नई है, या पहले के आचार्यो ने भी इसपर सोचा है?

४. इस योजना को हम स्वावलवी कहाँ तक कह सकते है?

५. विद्यार्थियो के परिश्रम से सात साल मे भी अध्यापकों का खर्च निकल सकेगा या नही?

६ जब देश के करोडों बालक एक आदर्श परिस्थिति मे माल तैयार करेगे तो देश के दूसरे कारीगर इस होड़ में कहाँ तक ठहर सकेगे?

७. मदरसो मे तैयार होनेवाले माल को सरकार कहाँतक खरीद सकेगी?

८ बाजार भाव से ज्यादा मजदूरी देने की ताकत राज्य में कैसे आयेगी?

९. किसी एक उद्योग को बीच मे रखकर शिक्षा के सब विषयो को उसके इर्द गिर्द बैठाया जा सकेगा या नही ?

१०. विद्यार्थियो की मजदूरी के साथ शिक्षक के वेतन को जोड देना कहाँ तक ठीक होगा ?

११. अगर अपना पूरा वेतन निकलवाने के लिए शिक्षक विद्यार्थी से सिर्फ मजदूरी-ही-मजदूरी कराये, तो उसका प्रतिकार कैसे किया जा सकेगा ?

१२. इस शिक्षा की सफलता के लिए नई पाठ्य-पुस्तको और नये अध्यापको की जो जरूरत पैदा होगी, वह कैसे पूरी की जायेगी ? क्या इस योजना का प्रयोग कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे ही किया जाय ?

१३ भूखे छात्रो से कोई काम नही लिया जा सकता। उनकी इस भूख का इलाज हम कहाँ तक कर सकेगे ?

१४. इस योजना में शिक्षिकाओ का उपयोग किस हद तक हो सकेगा ?

१५ प्राथमिक शिक्षा किस उम्र से शुरू होगी ?

१६ इस प्राथमिक शिक्षा की अवधि कितने वर्षो की होगी ?

१७. सात वर्ष से छोटे बालको की अर्थात् शिशुओ की शिक्षा का क्या प्रबन्ध किया जायेगा ?

१८ प्राथमिक शिक्षा मे अंग्रेजी का क्या स्थान रहेगा ? वह वैकल्पिक होगी, अनिवार्य होगी या वर्ज्य होगी ?

१९ प्राथमिक शिक्षा और कॉलेज की उच्च शिक्षा के बीच मे दोनो को जोड़नेवाला कोई पाठ्य-क्रम होगा या नही ?

(अ) अगर होगा तो कितने साल का ?

(आ) और कितने विभागो मे विभक्त होगा ?

२०. प्राथमिक शिक्षा की यह नई योजना केवल गाँवो के लिए होगी या शहरो के लिए भी ?

२१. स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध अलग रहेगा, या यह सहशिक्षा का रूप लेगा ?

२२ राष्ट्र-भाषा की पढाई कब से और किस तरह होगी ?

२३ इस शिक्षा-प्रणाली को व्यावहारिक रूप देने के लिए अेक स्थायी समिति नियुक्त की जाय या नही ?

२४ इसके पाठ्य-क्रम मे धार्मिक शिक्षा का कोई स्थान रहे या न रहे ?

२५ इस शिक्षा के साथ खेती का सम्बन्ध कहाँ तक रहेगा ?

२६. अक्षर-ज्ञान का प्रारम्भ कब से और किस ढग से होगा ?

२७ प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा की सम्पूर्ण योजना क्या होगी?

२८ इस नई योजना को हम बेकारी का बीमा या इलाज—इन्श्युरेन्स अगेन्स्ट अन्‌एम्प्लॉयमैंण्ट'—माने या नही ?

इस योजना के साथ ही मध्यप्रात और बरार के शिक्षा-मत्री माननीय श्री रविशकर शुक्ल की 'विद्या-मदिर-योजना' भी परिषद् के सामने विचारार्थ रक्खी गई थी।

परिषद् के लगभग सभी सदस्यो की विचार-समिति ने, २२ अक्तूबर की रात को जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, वही दूसरे दिन परिषद् के सामने विचारार्थ रक्खा गया और केवल एक सदस्य के आशिक विरोध के साथ वह सर्व-स्वीकृत हुआ।

इसके बाद गाधीजी ने तुरन्त ही इस प्रस्ताव के अनुसार शिक्षा की नई योजना तैयार करने के लिए एक समिति कायम की। इस समिति मे अधिकतर वे ही सज्जन चुने गये जो या तो गाधीजी से उनकी योजना को समझ चुके थे या आसानी के साथ उनसे समय-समय पर मिल सकते थे, और सलाह ले सकते थे।

जिन्हे इस योजना के कई हिस्सो से मतभेद था, और उनकी उपयोगिता पर सन्देह भी था, उनके दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर, उनकी सहायता प्राप्त करने के विचार से प्रोफेसर शाह से निवेदन किया गया कि वे इस समिति की सदस्यता स्वीकार करे।

इस परिषद् की कार्रवाई मे सिर्फ दो देवियों ने भाग लिया था। अुन्होंने प्रस्तुत विषय की चर्चा में काफी योग्यता और दिलचस्पी से हाथ बँटाया और अपनी स्वतन्त्र राय से परिषद् को प्रभावित किया।

इसमे तो कोई सन्देह नही, कि गाधीजी की इस योजना का वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर काफी प्रभाव पडेगा। यही कारण है कि आज सारे देश मे इस योजना की चर्चा हो रही है, और लोग इसका प्रयोग देखने के लिए उत्सुक है। यदि प्रयोग गाधीजी की श्रद्धा से किया गया तो मै मानता हूँ कि इसके कारण हमारे राष्ट्र के जीवन मे एक बडी ही शान्त और अद्भुत क्रान्ति हो जायेगी, और उसका प्रभाव ससार की दूसरी जातियो पर भी अवश्य ही पडेगा।

वर्धा
१७-१२-३७ } —दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

बुनियादी तालीम की योजना और अहिंसा

डा० डी० जॉन बोर दक्षिण भारत मे एक शिक्षा सस्था के संचालक है। अपनी लम्बी छुट्टी पर जाने से पहिले वे वर्धा आये थे। उन्होने वर्धा की शिक्षा-योजना पर बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन और विचार किया है। गाधीजी से कुछ मिनट बातचीत करने की उन्हे ख्वाहिश थी। उन्होने कहा कि यह शिक्षण योजना तो उन्हे बहुत ही अच्छी लगी, क्योकि उसकी जड मे अहिसा है। पर उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पाठ्यक्रम मे अहिंसा को इतना कम स्थान दिया गया है।

"आपको वह जिस वजह से इतनी पसद आई सो बिलकुल ठीक है।" गाधीजी ने कहा, "किन्तु सारा पाठ्यक्रम अहिसा पर केंद्रित नही किया जा सकता। यह काफी है कि वह एक अहिंसक दिमाग से निकली है। पर उसमें यह नही मान लिया गया है कि जो इसको स्वीकार करेगे वे अहिंसा को भी मानेगे। उदाहरणार्थ, समिति के सारे सदस्य अहिंसा को बतौर ध्येय के नहीं

मानते ह । जैसे एक निरामिष-भोजी आदमी का अहिंसक होना जरूरी नही है, वह स्वास्थ्य के कारण भी निरामिष-भोजी हो सकता है इसी प्रकार यह जरूरी नही कि जो भी कोई इस योजना को पसद करे अहिंसा मे उनका विश्वास होना ही चाहिये ।

डा० बोर—"मै कुछ ऐसे शिक्षा-शास्त्रियो को जानता हूं, जो इस योजना को महज इसीलिये स्वीकार नही करेगे कि उसका आधार अहिंसात्मक जीवन दर्शन पर है।"

गाधीजी—"मे जानता हूं। पर यों तो मे भी ऐसे कई नेताओ को जानता हूं जो खादी को इसीलिये ग्रहण नहीं करते कि उसका आधार मेरा जीवन दर्शन है। पर इसका क्या इलाज है? अहिंसा तो सचमुच उस योजना का हृदय है और यह म बडी आसानी से सिद्ध कर सकता हूं। पर मे जानता हूं कि यदि मे ऐसा करू तो उसके विषय मे लोगो का उत्साह बहुत कम हो जायेगा। आज तो जो लोग इस योजना को पसंद करते ह वे इस तथ्य को मानते है कि करोडो लोग जिस देश में भूखों मर रहे हो, वहा दूसरी किसी तरह बच्चो को पढा ही नही सकते। और यदि इस चीज को जारी कर दिया जायगा, तो देश में अपने आप एक नई अर्थ-व्यवस्था उत्पन्न हो जायगी। मेरे लिये तो इतना भी काफी है, जैसे कि कॉग्रेसवाले अहिसा को अपना जीवन सिद्धात मानने के बजाय उसे स्वाधीनता प्राप्ति की नीति भी मान लेते है तो मै उतने ही से सन्तोष मान लेता हूँ। अगर सारा हिन्दुस्तान उसे अपना ध्येय या जीवनादर्श मान ले तो हम तो आज ही यहा प्रजासत्तात्मक राज्य कायम कर सकते है।

डा० बोर—"मै समझ गया पर एक बात और है जो मेरी समझ में नहीं आ रही है। मै एक साम्यवादी हूँ और अहिंसा मे भी मेरा विश्वास है। अब एक अहिसावादी की हैसियत से तो आपकी योजना मुझे बहुत पसन्द है। पर जब मै साम्यवादी की दृष्टि से उस पर विचार करता हूं तो ऐसा लगता है कि वह हिन्दुस्तान को ससार से अलग कर देगी। हमे तो संसार के साथ घुलमिल जाना है। और यह बात साम्यवाद जितना अच्छी तरह से कर सकता है उतना और कोई चीज नही कर सकती।"

"मुझे तो इसमे कोई कठिनाई नही मालूम पडती," गाधीजी ने कहा, क्योकि हम कोई सारी दुनिया से नाता थोडे ही तोडना चाहते हैं। हम तो सभी राष्ट्रो के साथ खुला आदान-प्रदान रक्खेंगे। लेकिन जबरदस्ती से लादा हुआ आदान-प्रदान तो बन्द करना ही पडेगा। हम यह नही चाहते कि कोई हमारा शोषण करे, न हम खुद ही किसी दूसरे राष्ट्र का शोषण करना चाहते हैं। इस योजना के द्वारा तो हम सब बालको को उत्पादक बनाकर सारे राष्ट्र की शक्ल बदल देना चाहते ह, क्योकि इससे हमारा सारा सामाजिक ढाँचा ही बदल जायगा। लेकिन इसका यह मतलब नही है कि हम सारी दुनिया से ही नाता तोड़कर सबसे अलग हो जाना चाहते हैं। ऐसे राष्ट्र भी होंगे जो कुछ चीजे अपने यहाँ न कर सकने के कारण दूसरे राष्ट्रो के साथ आदान-प्रदान करना चाहेगे। इसमे कोई शक नही कि उन्हे उन चीजो के लिये दूसरे राष्ट्रो पर अवलम्बित रहना पडेगा, लेकिन जो राष्ट्र उनकी जरूरते पूरी करे उन्हे उनका शोषण नही करना चाहिये।"

"लेकिन अगर आप अपने जीवन को इस हद तक सादा बना ले कि दूसरे देशो की बनी किसी चीज की आपको जरूरत ही न हो तो आप अपने को उनसे अलग कर लेगे, जब कि मै चाहता हूँ कि आप अमेरिका के लिये भी जिम्मेदार हो।"

"अमेरिका के लिये जिम्मेदार तो हम इसी तरह हो सकते है कि न तो हम किसी का शोषण करे और न अपना ही शोषण किसी को करने दें। क्योकि जब हम ऐसा करेगे, तो अमेरिका भी हमारा अनुसरण करेगा; और तब हमारे बीच खुले आदान-प्रदान मे कोई कठिनाई नही होगी।"

"लेकिन आप तो जीवन सादा बनाकर उद्योगीकरण को ख़त्म कर देना चाहते हैं।"

"अगर मै तीस करोड के बजाय ३० हजार आदमियो से काम कराकर अपने देशकी सारी जरूरते पूरी कर सकूँ, तो मुझे उसमे कोई आपत्ति न होगी, बशर्ते कि उसके कारण ३० करोड आदमी बेकार और काहिल न बन जायँ। मैं यह जानता हूँ कि समाजवादी लोग इसे इस तरह पर ले जायँगे कि जिससे रोज एक-दो घण्टे से ज्यादा काम करने की जरूरत ही न रहे, लेकिन मै ऐसा नही चाहता।"

"क्यो ? इससे तो उन्हे अवकाश मिलेगा ।"

"लेकिन अवकाश किस लिये ? क्या हॉकी खेलने को ?"

"न सिर्फ इसलिये, बल्कि उत्पादक और उपयोगी दस्तकारियो जैसे कामो के लिये भी ।"

"उत्पादक और उपयोगी दस्तकारियो मे लगाने के लिये तो म उनसे कह ही रहा हूँ । लेकिन यह उन्हे आठ घटे रोज अपने हाथ से काम करके करना होगा ।"

"तब तो निश्चय ही आप समाज को ऐसी स्थिति पर नही ले जाना चाहते जब कि हरएक घर मे रेडियो हो और हरएक के पास अपनी मोटर गाडी रहे । अमेरिकन राष्ट्रपति हूवर ने यह तजवीज सोची थी । वह तो चाहते थे कि हरएक घर मे एक ही नही दो रेडियो हो और हरएक के पास दो-दो मोटर-गाडियाँ रहे ।"

"अगर इतनी अधिक मोटरे हमारे पास हो जाये तो फिर पैदल घूमने फिरने के लिये बहुत कम जगह रह जायगी" गाधीजी ने कहा ।

"मे आप से सहमत हूँ । हमारे यहाँ हर साल ही एक्सीडेंटो मे लगभग ४०,००० आदमी मरते है, और इससे तिगुने तो अगभग हो जाते है ।"

"वह दिन देखने के लिये मै जीवित नही रहूँगा, जब हिन्दुस्तान के हरएक गाव मे रेडियो पहुँच जायेंगे ।

"पडित जवाहरलाल के ध्यान में, मालूम होता है पैदावार की इफ़रात की बात रहती है ।"

"मे जानता हूँ । पर इफ़रात से क्या आशय है ? क्या लाखो टन गेहूँ नष्ट कर देने की क्षमता तो नही, जैसा कि आप लोग अमेरिका मे करते है ?"

"वह पूँजीवाद का प्रतिशोध है । वे अब गेहूँ नष्ट नही करते, बल्कि गेहूँ पैदा करने के लिये उन्हे सजा दी जा रही है । अब तो लोग वहाँ अेक दूसरे पर अडे फेंक कर मन-बहलाव करते है, क्योकि अडो की कीमत अब गिर गई है ।"

"यही तो हम चाहते नही है । इफरात से अगर आपका यह मतलब है कि हरेक आदमी के पास खाने-पीने और पहनने के लिये पर्याप्त भोजन और वस्त्र हो, अपनी बुद्धि शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने के लिये काफी साधन हो तो मुझे सतोष हो जाना चाहिये । पर जितना मै हजम कर सकता हूँ उससे ज्यादा भोजन

अपने पेट मे ठूँसना मै पसन्द नही करूँगा, और जितनी चीजो का मै अच्छी तरह उपयोग कर सकूँगा उनसे ज्यादा चीजे मुझे अपने पास रखनी नही चाहिये। पर मै हिन्दुस्तान मे न गरीबी या मुफलिसी चाहता हूँ, न मुसीबत, न गदगी।"

"लेकिन पडितजी ने तो अपनी 'आत्मकथा' मे यह लिखा है कि आप दरिद्रनारायण की पूजा करते है और दरिद्रता की खातिर ही आप दरिद्रता की सराहना करते है।"

"मुझे मालूम है," गाधीजी ने हँसते हुए कहा।

'हरिजन सेवक' १२ फरवरी १९३८.

शिक्षकों का व्रत

[२१ अप्रैल सन् १९३८ को वर्धा में विद्यामंदिर ट्रेनिंग स्कूल का उद्घाटन करते हुए गांधीजी ने नीचे लिखा भाषण दिया:]

"आज विद्यामदिर के छात्रो ने पवित्र व्रत लिया है। यह व्रत बहुत कठिन है। इसका पूरा होना बडा दुशवार है। १५ रुपये माहवार लेकर २५ बरस तक लगातार सेवा करने का यह व्रत है। पाँच हजार से अधिक अर्जियो का आना यह जाहिर करता है कि हमारे देश मे बेकारी हद दर्जे तक पहुँच गई है। कुछ लोग उच्च उद्देश्य से काम करते हुए दालभात तक प्राप्त नही कर सकते। बहुत से अपना पेट पालने के लिये कोई काम तक नही पा रहे है। आपका यह व्रत आत्मत्याग का है। अगर आप अपनी प्रतिज्ञा मे धनी साबित हुअे, तो आप दुनिया के सामने एक नया आदर्श उपस्थित करेगे। असफल हुए, तो जगत् में मेरी और श्री० रविशकर

शुक्ल की निंदा की जायगी। इसलिये यह ज्यादा अच्छा होगा कि ढीले-ढाले लोग अभी से अलग हो जायँ।

यह योजना पूरी तरह से भारतीय योजना है। इसके आदर्श का जन्म सेगाँव में हुआ है। असली हिन्दुस्तान तो सात लाख गाँवो में बसता है, जो सेगाँव से भी बहुत हीन दशा में है। मै चाहता हूँ कि आप लोग इन गाँवो से निरक्षरता को दूर भगा दे, ग्रामनिवासियो के लिये अन्न और वस्त्र के साधन जुटावे, और सत्य और अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का सदेश गाँवो मे पहुँचावे। यह जिम्मेवारी आपके ऊपर है। आपका यह धर्म है कि आप इस भावना को लेकर काम करे। मैंने तो काफी मनन के बाद अपनी यह योजना पेश की है। यदि यह योजना असफल हुई तो इसके लिये अध्यापक दोषी ठहराये जायँगे। दस्तकारी के जरिये भूमिति, इतिहास, भूगोल और गणित की शिक्षा दी जायगी, और छात्रों के शरीरश्रम से स्कूल का खर्च निकालने का प्रयत्न किया जायगा।

हर हिटलर तलवार के बल पर अपना उद्देश्य पूरा कर रहा है; मै आत्मा के द्वारा पूरा करना चाहता हूँ। विदेशी विचारो और आदर्शो का आवरण निकाल फेंकिये, अपने-आपको ग्रामवासियो के साथ समरस बना दीजिये।

पाश्चात्य जगत् विनाशक शिक्षा दे रहा है; हमे अहिंसा के ज़रिये रचनात्मक शिक्षा देनी है। मंगलमय भगवान आपको शक्ति दे जिससे आप वांञ्छित उद्देश्य को सफल बना सकें, और आज जो व्रत लिया है उसे पूरा कर सके।"

'हरिजन' २१ अप्रैल, १९३८.

उद्योग द्वारा शिक्षा

इधर कई बातो के सिलसिले मे गाधीजी ने विस्तारपूर्वक समझाया कि शिक्षा की यह नई योजना उनके दिमाग मे किस तरह आई और उद्योग तथा शिक्षा का मेल, जो कि उनकी दृष्टि मे है, किस प्रकार हो सकता है। उन्होने कहा, "एक नई पद्धति की आवश्यकता मै बहुत दिनो से महसूस कर रहा था, क्योकि मैं जानता था कि आधुनिक शिक्षा-पद्धति निष्फल साबित हुई, और यह पता मुझे जब मै दक्षिण आफ्रिका से लौटा, तब बहुत से विद्यार्थी जो मुझसे मिलने आते थे उनके द्वारा लगा। इसलिए मैने आश्रम मे दस्तकारियो की शिक्षा दाखिल करके इसका आरम्भ किया। निस्सन्देह, दस्तकारियो के शिक्षण पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि औद्योगिक शिक्षा से बच्चे जल्दी दिक आ गये और उन्होने यह खयाल किया कि हम साहित्यिक शिक्षा से वचित किये जा रहे है। उनकी यह गलती थी, क्योकि थोडासा भी उन्होने वहा जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह भी उससे तो कही ज्यादा ही था, जो कि साधारणतया बच्चे पुराने ढर्रे पर चलनेवाले स्कूलो मे प्राप्त करते है। पर इस चीज ने मुझे विचार में डाल दिया और मै इस नतीजे पर पहुँचा कि औद्योगिक के साथ साहित्यिक शिक्षा नही, बल्कि औद्योगिक शिक्षण के द्वारा साहित्यिक शिक्षा देनी चाहिये। ऐसा करने पर वे औद्योगिक तालीम को एक जलील मशक्कत नही समझेगे, और साहित्यिक शिक्षा मे एक नया सन्तोष और नई उपयोगिता आ जायगी। कॉग्रेस ने जब मन्त्रि-पद ग्रहण किया तब मुझे लगा कि अपने विचार को राष्ट्र के सामने रखना चाहिये, और मुझे खुशी है कि कई जगह इसका स्वागत हुआ है।"

इसके बाद उन्होने कहा:—"हमने यह निश्चय किया कि अंग्रेजी को कोर्स से निकाल देना चाहिये, क्योकि हम जानते थे कि बच्चो का अधिकाश समय अग्रेजी के शब्दो और वाक्यो के रटने मे चला जाता है। और फिर भी वे जो कुछ सीखते है उसे अपनी भाषा में जाहिर नहीं कर सकते, और अध्यापक उन्हे

जो सिखाता है उसे ठीक-ठीक समझ नही सकते। उलटे,- अपनी मातृभाषा को, महज उपेक्षा के कारण, भूल जाते है। ऐसा प्रतीत हुआ कि औद्योगिक तालीम के द्वारा शिक्षा दी जाय, तभी इन दोनो बुराइयो से बच सकते है।

"मुझे शिक्षण देने का आरम्भ करना हो तो मै तो इस तरह करूगा जिस दिन बच्चे मेरे पास आवेगे सबसे पहिले मै यह देखूगा कि उनका दिमाग कहा तक विकसित हुआ है, वे पढना और लिखना और थोडा बहुत भूगोल जानते है या नही, और तब मै तकली दाखिल करके उनकी तैयारी बढाने की कोशिश करूँगा।

"आप शायद मुझसे पूछेगे कि इतनी तमाम दस्तकारियो मे से मैने तकली ही को क्यो चुना? क्योकि सर्वप्रथम हमने जिन दस्तकारियो की शोध की थी, उनमे एक तकली की भी दस्तकारी है, और जो इतने युगो से चली आ रही है। प्राचीन काल मे हमारा तमाम कपडा तकली के सूत का ही बनता था। चर्खा तो पीछे आया। फिर बढिया से बढिया अक का सूत चर्खे पर कत भी नही सकता, इसलिए हमे पुन तकली की ही शरण लेनी पडी। तकली ने मनुष्य की अन्वेषणात्मक बुद्धि को इतनी ऊचाई तक पहुँचा दिया कि जिस ऊचाई तक वह पहिले कभी नही पहुँची थी। इसमे उगलियो की कार्यकुशलता का सर्वश्रेष्ठ उपयोग हुआ। पर चूकि तकली ऐसे कारीगरो तक ही सीमित रही, जिन्होने कि शिक्षा को कभी प्राप्त किया ही नही था, इसलिये उसका उपयोग लुप्त-सा हो गया। अगर हम तकली का उद्धार करके उसे आज फिर उसी गौरवपूर्णपद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते है, अगर हमे अपने ग्रामजीवन का पुनरुद्धार और पुनर्निर्माण करना है, तो हमे बच्चो की शिक्षा का श्रीगणेश तकली से ही करना चाहिये।

"इसलिये दूसरा पाठ मेरा यह चलेगा लडको को मै यह सिखलाऊंगा कि हमारे प्रतिदिन के जीवन मे तकली को क्या स्थान प्राप्त था। इसके बाद मै उन्हे थोडा-सा इतिहास दूगा और यह भी बताऊगा कि उसका पतन कैसे हुआ। फिर भारतवर्ष के इतिहास के सक्षिप्त क्रम पर आऊगा—आरम्भ ईस्ट इडिया कम्पनी से या उससे भी पहिले मुसलमान काल से करूगा, उन्हे तफसीलवार यह बताऊगा कि ईस्ट इडिया कम्पनी की तिजारत ने किस प्रकार हमारे देश का शोषण किया है, और हमारी इस मुख्य दस्तकारी का दम किस तरह बाकायदा तरीके से

घोटा गया और अत मे इसका खात्मा कर डाला गया। इसके बाद तकली के यत्र शास्त्र का, इसकी बनावट का सक्षिप्त कोर्स चलेगा। शुरु-शुरू मे मिट्टी की या आटे की छोटी-सी गोली सुखाकर और उसके ठीक मध्य मे बाँस की सीक डालकर तकली बनाई गई होगी। बिहार और बगाल के कुछ भागो मे अब भी इस किस्म की तकली देखने मे आती है। इसके बाद मिट्टी की गोली की जगह ईंट की चकती ने ले ली, और अब आज ईंट की चकती की जगह लोहे या फौलाद और पीतल की चकतीने तथा बाँस की सीक की जगह फौलाद के तार ने ले ली है। यहा भी हम काम के काफी प्रश्न सोच सकते है—जैसे चकती और तार का आकार इतना ही क्यो रखा गया है, इससे ज्यादा या कम क्यो नही? इसके बाद, कपास पर थोडे मे व्याख्यान दिये जायेगे, जैसे कपास खासकर किस तरह की जमीन मे पैदा होता है, उसकी कितनी किस्मे है, किन देशो और हिन्दुस्तान के किन प्रान्तो मे वह उगाया जाता है, वगैरा वगैरा।

"कपास की खेती के बारे मे और उसके लिये कौन सी जमीन सबसे उपयुक्त हो सकती है इस विषय मे भी कुछ ज्ञान दिया जा सकता है। इससे हम थोडा खेती-बाडी के बारे मे भी जान लेगे।

आप देखेगे कि अपने विद्यार्थियो को इस प्रकार का शिक्षण देने के पहिले शिक्षक को खुद काफी परिपक्व ज्ञान प्राप्त करना होगा। कताई के तारो की गिनती गजो मे निकालना, सूत का नबर मालूम करना, लच्छिया बनाना बुनकर के लिये उसे तैयार करना, कपडे की अमुक बुनावट मे कितने गज सूत लगेगा आदि बातो के द्वारा पूरा प्रारभिक गणित सिखाया जा सकता है। कपास उगाने से लेकर-कपास तोडना, ओटना, धुनना, कातना, माडी लगाना, बुनना,—तक की तमाम क्रियाओ का अपना-अपना सबधित यत्र-शास्त्र, इतिहास और गणित है।

"मुख्य कल्पना यह है कि बच्चो को जो भी दस्तकारी सिखाई जाय उसके द्वारा उन्हे पूरी तरह से शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शिक्षा दी जाय। उद्योग की तमाम क्रियाओ के द्वारा आपको बच्चो के अन्दर जो भी अच्छी चीज है, उस सबको विकसित करना है, और आप इतिहास, भूगोल और गणित के जो पाठ सिखायेगे वे सब उस उद्योग से सबधित होगे।

अगर इस प्रकार की शिक्षा बच्चो को दी जाय, तो परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलबी हो जायगी। लेकिन सफलता की कसौटी उसका स्वाश्रयी रूप नही बल्कि यह देखकर सफलता का अदाज लगाना होगा कि वैज्ञानिक रीति से उद्योग की शिक्षा द्वारा मनुष्यत्व का पूर्ण विकास हुआ है या नही। सचमुच मै ऐसे अध्यापक को कभी नही रक्खूगा जो चाहे जिन परिस्थितियो मे शिक्षा को स्वाश्रयी बना देने का वचन दे देगा। स्वावलबी अग इस बात का न्यायसिद्ध परिणाम होगा कि विद्यार्थियो ने अपनी प्रत्येक कार्यशक्ति का ठीक-ठीक उपयोग करना सीख लिया है। अगर एक लडका तीन घटे रोज काम करके किसी दस्तकारी से निश्चयपूर्वक अपनी जीविका लायक पैसा कमा लेता है, तो जो अपनी विकसित बुद्धि और आत्मा लगाकर उस काम को करेगा वह कितना अधिक नही कमा लेगा ?"

'हरिजन' ११ जून, १९३८

नई तालीम

हाल ही मे स्थापित हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की एक बैठकमे गाधीजी ने नवीन शिक्षा-पद्धति का आतरिक अर्थ और उद्देश्य बतलाया था। आप बगैर सोचे-समझे मेरी बातो को न मान ले। आप तो सिर्फ उन्ही बातो को स्वीकार करे जो आपके गले उतर सके और आपको सन्तोष दिला सके। लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि हम अगर दो स्कूल भी ठीक तरह से चला सके तो मै तो मारे हर्ष के नाच उठूगा।

बातचीत के शुरू में अुन्होने बिना किसी सन्देह के अपने विचारो को जाहिर करते हुए कहा—"हम तो इस अध्यापन मंदिर को एक ऐसा विद्यालय बना देना

चाहते है, जिसके जरिये हम आजादी हासिल कर सके और अपनी तमाम बुराइयो को जिनमे कि हमारे कौमी झगडे भी है, हमेशा के लिये सुलझा सके। इसके लिये हमे अहिंसा पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करना होगा। हिटलर और मुसोलिनी के स्कूलो का मूल उद्देश्य हिंसा है। पर हमारा उद्देश्य तो काग्रेस के अनुसार अहिंसा है। इसमे हमे अपनी तमाम समस्याओ को अहिंसा के जरिये ही हल करना है। अपने गणित को, अपने विज्ञान को, अपने इतिहास को हम केवल अहिंसा की दृष्टि से देखेगे और इन विषयो से सम्बन्धित समस्याए अहिंसा के ही रग में रगी होगी। तुर्किस्तान की सुप्रसिद्ध महिला बेगम खालिदा खातून ने जब जामिया मिलिया इस्लामिया मे अपने भाषण दिये थे तब मैने कहा था कि इतिहास अभी तक राजाओ का और उनके युद्धो का वर्णन मात्र रहा है, पर भविष्य मे जो इतिहास बनेगा वह मानवता का होगा। वह इतिहास अहिंसा का ही हो सकता है, और है। फिर हमे शहरो के उद्योगधधो को छोडकर ग्राम-उद्योगो की ओर सारा ध्यान देना होगा। मतलब यह कि अगर हम अपने सात लाख गांवो को जीवित रखना चाहते है, तो हमें गावो की दस्तकारियो का पुनरुद्धार करना होगा, और आप यकीन रक्खे कि अगर इन उद्योगो के ज़रिये हम शिक्षा दे सके तो हम एक क्राति पैदा कर सकते है। हमे अपनी पाठ्य पुस्तके भी इसी उद्देश्य को सामने रखकर तैयार करनी होगी।

मै चाहता हूँ कि मै जो कुछ कहता हूँ उसपर आप अच्छी तरह गौर करे, और जो बात आपको ठीक न जंचें उसे छोड दे। मेरी बाते हमारे मुसलमान भाइयो को ठीक न जँचे तो वे उन्हे खुशी से त्याग सकते है। मै जो अहिंसा चाहता हूँ वह सिर्फ अंग्रेजों के साथ के युद्ध तक ही सीमित नही है। मै चाहता हूँ कि वह हमारे तमाम भीतरी सवालो और समस्याओ पर भी लागू हो। सच्ची और सक्रिय अहिंसा तो तभी होगी जब कि वह हिन्दू और मुसलमानो की जीवित एकता को जन्म दे सकेगी—ऐसी एकता नही जो अपना आधार किसी आपसी भय पर रखती हो, मसलन, हिटलर और मुसोलिनी के दरम्यान हुई सन्धि या पैक्ट।"
'हरिजन' ७ जुलाई १९३८.

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा के बारे मे कुछ समय पूर्व मैने डरते-डरते सक्षिप्त मे जो विचार प्रकट किये थे उनकी माननीय श्री. श्रीनिवास शास्त्री ने नुक्ताचीनी की है, जिसका उन्हे पूरा हक है। मनुष्य, देशभक्त, और विद्वान के रूप मे मेरे हृदय मे उनके लिये बहुत ऊँचा आदर है। इसलिये जब मै अपने को उनसे असहमत पाता हूं, तो मेरे लिये हमेशा ही वह बडे दुःख की बात होती है। इतने पर भी कर्तव्य मुझे इस बात के लिये बाध्य कर रहा है कि उच्च शिक्षा के विषय मे मेरे जो विचार है, उन्हे मै पहले से भी अधिक पूर्णता के साथ फिर से व्यक्त कर दूं, जिससे कि पाठक खुद ही मेरे और उनके विचारो के भेद का समझ ले।

अपनी मर्यादाओ को मै स्वीकार करता हू। मैने विश्वविद्यालय की कोई नाम लेने योग्य शिक्षा नही पाई है। मेरा स्कूली जीवन भी औसत दर्जे से अधिक अच्छा न रहा। मै तो यही बहुत समझता था कि किसी तरह इम्तहान मे पास हो जाऊ। स्कूल मे डिस्टिक्शन (यानी विशेष योग्यता) पाना तो ऐसी बात थी जिसकी मैने कभी आकाक्षा भी नही की। मगर फिर भी शिक्षा के विषय में जिसमे कि वह शिक्षा भी शामिल है जिसे उच्च शिक्षा कहा जाता है, आम तौर पर, मै दृढ विचार रखता हू। और देश के प्रति मै अपना कर्तव्य समझता हूं कि मेरे विचार स्पष्ट रूप से सबको मालूम हो जायँ और उनकी वास्तविकता सबके सामने आ जाय। इसके लिये मुझे अपनी उस भीरुता या सकोच भावना को छोडना ही पडेगा जो लगभग आत्मदमन की हदतक पहुँच गई है। इसके लिये न तो मुझे उपहास का भय करना चाहिये न लोकप्रियता या प्रतिष्ठा की ही चिन्ता होनी चाहिये। क्योकि अगर मै अपने विश्वास को छिपाऊगा तो निर्णय की भूलों को भी कभी दुरुस्त न कर सकूंगा। लेकिन मै तो हमेशा उन्हे ढूंढने और उससे भी अधिक उन्हे सुधारने के लिये उत्सुक हूं।

अब मै अपने उन निष्कर्षों को बता दूं जिनपर कि मै कई बरसो से पहुचा आ हू, और जब भी कभी मौका मिला है उनको अमल में लाने की कोशिश की है।

(९१) दुनिया मे प्राप्त हो सकनेवाली ऊँची से ऊँची शिक्षा का भी मैं विरोधी नही हूँ।

(२) राज को जहाँ भी निश्चित रूप से इसकी ज्यादा जरूरत हो वहाँ इसका खर्च उठाना चाहिये।

(३) साधारण आमदनी द्वारा सारी उच्च शिक्षा का खर्च चलाने के मैं खिलाफ हूं।

(४) मेरा यह निश्चित विश्वास है कि हमारे कालेजो मे साहित्य की जो इतनी सारी तथाकथित शिक्षा दी जाती है वह सब बिलकुल व्यर्थ है और उसका परिणाम शिक्षित वर्गो की बेकारी के रूप मे हमारे सामने आया है। यही नही बल्कि जिन लडके-लडकियो को हमारे कालेजो की चक्की मे पिसने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी इसने चौपट कर दिया है।

विदेशी भाषा के माध्यम ने, जिसके जरिये कि भारत मे उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुचाया है। अभी हम अपने इस जमाने के इतने नजदीक हैं कि इस नुकसान का निर्णय नही कर सकते। और, फिर, ऐसी शिक्षा पानेवाले हमको ही इसका शिकार और न्यायाधीश दोनो बनना है, जो कि लगभग असम्भव काम है।

अब मेरे लिये यह बतलाना आवश्यक है कि मै इन निष्कर्षो पर क्यो पहुँचा। यह शायद अपने कुछ अनुभवो के द्वारा ही मै सबसे अच्छी तरह बतला सकता हूँ।

१२ बरस की उम्र तक मैंने जो शिक्षा पाई वह अपनी मातृभाषा गुजराती में पाई थी। उस वक्त गणित, इतिहास और भूगोल का मुझे थोडा-थोडा ज्ञान था। इसके बाद मै एक हाईस्कूल मे दाखिल हुआ। इसमे भी पहिले तीन साल तक तो मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम रही। लेकिन स्कूल मास्टर का काम तो विद्यार्थियो के दिमाग मे जबरदस्ती अग्रेजी और उसके मनमाने हिज्जो तथा उच्चारण पर काबू पाने मे लगाया जाता था। ऐसी भाषा का पढना हमारे लिये अेक कष्टपूर्ण अनुभव था जिसका उच्चारण ठीक उसी तरह नही होता जैसी कि वह लिखी जाती है। हिज्जो को कण्ठस्थ करना एक अजीब-सा अनुभव था। लेकिन

यह तो मै प्रसगवश कह गया, वस्तुत मेरी दलील मे इसका कोई सम्बन्ध नही है। मगर पहिले तीन साल तो तुलनात्मक रूप मे ठीक ही निकल गये ।

जिल्लत तो चौथे साल से शुरु हुई । अलजबरा (बीजगणित), केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र), एस्ट्रोनॉमी (ज्योतिष), हिस्ट्री (इतिहास), ज्योग्रफी (भूगोल) हरेक विषय मातृभाषा के बजाय अग्रेजी मे ही पढना पडा । कक्षा मे अगर कोई विद्यार्थी गुजराती, जिसे कि वह समझता था, बोलता तो उसे सजा दी जाती । हाँ, अंग्रेजी को, जिसे न तो वह पूरी तरह समझ सकता था और न शुद्ध बोल सकता था, अगर वह बुरी तरह बोलता तो भी शिक्षक को कोई आपत्ति नहीं होती थी । शिक्षक भला इस बात की फिक्र क्यो करे ? क्योकि खुद उसकी ही अग्रेजी निर्दोष नही थी । इसके सिवाय और हो भी क्या सकता था ? क्योकि अग्रेजी उसके लिये भी उसी तरह विदेशी भाषा थी जिस तरह कि उसके विद्यार्थियो के लिये । इससे बडी गडबड होती । हम विद्यार्थियो को अनेक बाते कण्ठस्थ करनी पडती, हालाकि हम उन्हे पूरी तरह नहीं समझ सकते थे और कभी-कभी तो बिलकुल ही नही समझते थे । शिक्षक के हमे ज्यामेटरी (रेखा-गणित) समझाने की भरपूर कोशिश करने पर मेरा सिर घूमने लगता । सच तो यह है कि यूक्लिड (रेखागणित) की पहिली पुस्तक के १३ वे साध्य तक जब तक न पहुँच गये, मेरी समझ में ज्यामेटरी बिलकुल नही आई । और पाठकों के सामने मुझे यह मजूर करना ही चाहिये कि मातृभाषा के अपने सारे प्रेम के बावजूद आज भी मै यह नही जानता कि ज्यामेटरी, अलजबरा आदि की पारिभाषिक बातों को गुजराती मे क्या कहते है । हाँ, यह अब मे जरूर देखता हूँ कि जितनी गणित,रेखा गणित, बीजगणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने मे मुझे चार साल लगे अगर अग्रेजी के बजाय गुजराती मे मैंने उन्हे पढा होता तो उतना मैंने अेक ही साल मे आसानी से सीख लिया होता । उस हालत मे मै आसानी और स्पष्टता के साथ इन विषयो को समझ लेता । गुजराती का मेरा शब्द-ज्ञान कहीं समृद्ध हो गया होता, और उस ज्ञान का मैंने अपने घर मे उपयोग किया होता । लेकिन इस अग्रेजी के माध्यम ने तो मेरे और मेरे कुटुम्बियों के बीच, जो कि अग्रेजी स्कूलो मे नही पढे थे, एक अदम्य खाई खड़ी कर दी । मेरे पिता को यह कुछ पता न था कि मै क्या कर रहा हूँ । मै चाहता तो भी अपने पिता को इस बात

मे दिलचस्पी पैदा नही कर सकता था कि मै क्या पढ रहा हूँ। क्योकि यद्यपि बुद्धि की उनमे कोई कमी नही थी, मगर वह अग्रेजी नही जानते थे। इस प्रकार अपने ही घर मे मै वडी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था। निश्चय ही म औरो मे ऊँचा आदमी वन गया था। यहा तक कि मेरी पोशाक भी अपनेआप वदलने लगी। लेकिन मेरा जो हाल हुआ वह कोई साधारण अनुभव नही था, बल्कि अधिकाश का यही हाल होता है।

हाई स्कूल के प्रथम तीन वर्षो मे मेरे सामान्य ज्ञान मे बहुत कम वृद्धि हुई। यह समय तो लडको को हरेक चीज अग्रेजी के जरिये सीखने की तैयारी का था। हाईस्कूल तो अग्रेजो की सास्कृतिक विजय के लिये थे। मेरे हाईस्कूल के तीन सौ विद्यार्थियो ने जो ज्ञान प्राप्त किया वह तो हमी तक सीमित रहा। वह सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिये नही था।

एक दो शब्द साहित्य के बारे मे भी। अग्रेजी गद्य और पद्य की कई किताबे हमे पढनी पडी थी। इसमे शक नही कि यह सब वढिया साहित्य था। लेकिन सर्वसाधारण की सेवा या उसके सम्पर्क मे आने मे उस ज्ञान का मेरे लिये कोई उपयोग नही हुआ है। मै यह कहने मे असमर्थ हूँ कि मैने अंग्रेजी गद्य और पद्य न पढा होता तो मै एक बेशकीमत खजाने से वचित रह जाता। इसके बजाय, सच तो यह है कि अगर ये सात साल मैने गुजराती पर प्रभुत्व प्राप्त करने मे लगाये होते और गणित, विज्ञान तथा सस्कृत आदि विषयो को गुजराती मे पढा होता, तो इस तरह प्राप्त किये हुए ज्ञान में मैने अपने अडोसी-पडोसियो को आसानी से हिस्सेदार बनाया होता। उस हालत मे मैने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया होता, और कौन कह सकता है कि अमल मे उतारने की अपनी आदत तथा देश और मातृभाषा के प्रति अपने वेहद प्रेम के कारण सर्वसाधारण की सेवा मे मै और भी अधिक अपनी देन क्यो न दे सकता ?

यह हर्गिज न समझना चाहिये कि अग्रेजी या उसके श्रेष्ठ साहित्य का मै विरोधी हूँ। 'हरिजन' मेरे अग्रेजी प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है। लेकिन उसके साहित्य की महत्ता भारतीय राष्ट्र के लिये उससे अधिक उपयोगी नही, जितनी कि उसके लिये इंग्लैंड की समशीतोष्ण जलवायु, या वहाँ के सुन्दर दृश्य है।

भारत को तो अपने ही जलवायु, दृश्यो और साहित्य मे तरक्की करनी होगी फिर चाहे ये अग्रेजी जलवायु, दृश्यो और साहित्य से घटिया दर्जे के ही क्यो न हो । हमे और हमारे बच्चो को तो अपनी खुद की ही विरासत बनानी चाहिये अगर हम दूसरो की विरासत लेगे तो अपनी नष्ट हो जायगी । सच तो यह है कि विदेशी सामग्री पर हम कभी उन्नति नही कर सकते । मै तो चाहता हूं कि राष्ट्र अपनी ही भाषा का कोष भरे और इसके लिये ससार की अन्य भाषाओ का कोष भी अपनी ही देशी भाषाओ मे सचित करे । रवीन्द्रनाथ की अनुपम कृतियो का सौन्दर्य जानने के लिये मुझे बगाली पढने की कोई जरूरत नही क्योकि सुन्दर अनुवादो के द्वारा मै उसे पा लेता हूं । इसी तरह टालसटाय की सक्षिप्त कहानियो की कद्र करने के लिये गुजराती लडके-लडकियो को रूसी भाषा पढने की कोई जरूरत नही, क्योकि अच्छे अनुवादो के जरिये वे उन्हे पढ लेते है । अग्रेजो को इस बात का फख्र है कि ससार की सर्वोत्तम साहित्यिक रचनाए प्रकाशित होने के एक सप्ताह के अन्दर अन्दर सरल अग्रेजी मे उनके हाथो मे आ जाती है । ऐसी हालत मे, शेक्सपियर और मिल्टन के सर्वोत्तम विचारो और रचनाओ के लिये मुझे अग्रेजी पढने की जरूरत क्यो हो ? यह एक तरह की अच्छी मितव्ययता होगी कि ऐसे विद्यार्थियो का अलग ही एक वर्ग कर दिया जाय, जिनका काम यह हो कि विभिन्न भाषाओ मे पढने लायक जो सर्वोत्तम सामग्री हो उसको पढे और देशी भाषाओ मे उसका अनुवाद करे । हमारे प्रभुओ ने तो हमारे लिये गलत ही रास्ता चुना है, और आदत पड जाने के कारण गलती ही हमे ठीक मालूम पडने लगी है ।

हमारी इस झूठी, अभारतीय शिक्षा मे लाखो आदमियो का दिन-दिन जो लगातार नुकसान हो रहा है, उसके तो रोज ही मै प्रमाण पा रहा हूं । जो ग्रैजुएट मेरे आदरणीय साथी है, उन्हे जब अपने आन्तरिक विचारो को व्यक्त करना पडता है तो खुद वही परेशान हो जाते है । वे तो अपने ही घरो मे अजनबी है । अपनी मातृभाषा के शब्दो का उनका ज्ञान इतना सीमित है कि अग्रेजी शब्दो और वाक्यों तक का सहारा लिये बगैर वे अपने भाषण को समाप्त नही कर सकते । न अंग्रेजी किताबो के बगैर वे रह सकते है । आपस मे भी वे अक्सर अग्रेजी मे लिखा-पढी करते है । अपने साथियो का उदाहरण मै यह बताने के लिये दे रहा हूँ कि इस बुराई ने कितनी गहरी जड जमा ली है ।

हमारे कालेजो मे जो समय की बर्बादी होती है उसके पक्ष मे दलील यह दी जाती है कि कालेजो मे पढने के कारण अितने विद्यार्थियो मे से अगर एक जगदीश बोस भी पैदा हो सके तो हमे अिस बर्बादी की चिता करने की जरूरत नही। अगर यह बर्बादी अनिवार्य होती तो मै जरूर इस दलील का समर्थन करता लेकिन मै आशा करता हूँ कि मने यह बतला दिया है कि यह न तो अनिवार्य थी, और न अभी ही अनिवार्य है। क्योकि जगदीश बोस वर्त्तमान शिक्षा की उपज नही थे। वे तो भयकर कठिनाइयो और बाधाओ के बावजूद अपने परिश्रम की बदौलत ऊँचे उठे, और उनका ज्ञान लगभग ऐसा बन गया जो सर्व साधारण तक नही पहुँच सकता। बल्कि ऐसा मालूम पडता है कि हम यह सोचने लगे है कि जब तक कोई अग्रेजी न जाने तब तक वह बोस के सदृश महान वैज्ञानिक होने की आशा नही कर सकता। यह ऐसी मिथ्या धारणा है जिससे अधिक की मै कल्पना ही नहीं कर सकता। जिस तरह हम अपने को लाचार समझने मालूम पडते है, उस तरह एक भी जापानी अपनेको नही समझता।

यह बुराई, जिसका कि मेने वर्णन करने की कोशिश की है, इतनी गहरी पैठी हुई है कि कोई साहसपूर्ण उपाय ग्रहण किये बिना काम नही चल सकता। हाँ, काग्रेसी मत्री चाहे तो इस बुराई को दूर न भी कर सके तो इसे कम तो कर ही सकते हे।

विश्वविद्यालयो को स्वावलवी जरूर बनाना चाहिये। राज्य को तो साधारणत उन्ही को शिक्षा देनी चाहिये जिनकी सेवाओ की उसे आवश्यकता हो। अन्य सब दिशाओ के अध्ययन के लिये उसे खानगी प्रयत्न को प्रोत्साहन देना चाहिये, शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर 'हालत मे बदला जाना चाहिये, और प्रान्तीय भाषाओ को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिये। यह जो काबिले सजा बर्बादी रोज बरोज हो रही है इसके बजाय तो अस्थाअी रूप से अव्यवस्था हो जाना भी पसन्द करूँगा।

प्रान्तीय भाषाओ का दरजा और व्यावहारिक मूल्य बढाने के लिये मैं चाहूँगा कि अदालतो की कार्रवाई अपने अपने प्रान्त की ही भाषा में हो। प्रान्तीय धारासभाओ की कार्रवाई भी प्रान्तीय भाषा या, जहा एक से अधिक भाषा प्रचलित हों, उनमे होनी चाहिये। धारासभाओ के सदस्यो से मै कहना चाहता हूँ

कि वे चाहे तो एक महिने के अन्दर-अन्दर अपने प्रान्तो की भाषाएं भली भांति समझ सकने हैं। तामिल भाषी के लिये कोई रुकावट नही, जो वह तेलगू, मलयालम और कन्नड के, जो कि सब तामिल से मिलती-जुलती हुई हं, मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्दो को आसानी से न सीख सके।

मेरी सम्मति मे यह कोई ऐसा प्रश्न नही है कि जिसका निर्णय साहित्यज्ञो के द्वारा हो। वे इस बात का निर्णय नही कर सकते कि किस स्थान के लडके लडकियो की पढाई किस भाषा मे हो: क्योकि इस प्रश्न का निर्णय हरेक स्वतत्र देश मे पहिले ही हो चुका है। न वे यही निर्णय कर सकते है कि किन विषयों की पढाई हो, क्योकि यह उस देश की आवश्यकताओ पर निर्भर रहता है जिस देश के बालको की पढ़ाई होनी है। उन्हे तो बस यही सुविधा प्राप्त है कि राष्ट्र की इच्छा को यथासम्भव सर्वोत्तम रूप मे लाये। अत जब हमारा देश वस्तुत: स्वतत्र होगा तब शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल एक ही तरह से हल होगा। साहित्यिक लोग पाठ्यक्रम बनायेंगे और फिर उसके अनुसार पाठ्य पुस्तके तैयार करेंगे, और स्वतत्र भारत की शिक्षा पानेवाले विदेशी शासको को करारा जवाब देंगे। जब तक हम शिक्षित वर्ग इस प्रश्न के साथ खिलवाड करते रहेगे, मुझे इस का बहुत भय है कि हम जिस स्वतत्र और स्वस्थ भारत का स्वप्न देखते हैं उसका निर्माण नही कर पायेंगे। हमें तो सतत प्रयत्न पूर्वक अपनी गुलामी से मुक्त होना है, फिर वह चाहे शिक्षणात्मक हो या आर्थिक अथवा सामाजिक या राजनैतिक। तीन चौथाई लड़ाई तो वही प्रयत्न होगा जो कि इसके लिये किया जायगा।

इस प्रकार म इस बात का दावा करता हूँ कि मै उच्च शिक्षा का विरोधी नही हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मै जरूर विरोधी हूँ जो कि इस देश मे दी जा रही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होगे, अधिक सख्या मे और अच्छी रसायन शालाए और प्रयोगशालाए होगी। उसके अन्तर्गत हमारे पास ऐसे रसायनशास्त्रियो, इजिनियरो तथा अन्य विशेषज्ञो की फौज की फौज होनी चाहिये जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हो और उस प्रजा की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकें जो अपने अधिकारों और अपनी आवश्यकताओ को दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करती जा रही है। और ये सब विशेषज्ञ विदेशी भाषा नहीं बल्कि जनता की ही भाषा बोलेगे। ये

लोग जो ज्ञान प्राप्त करेंगे वह सबकी संयुक्त सम्पत्ति होगी। तब खाली नकल की जगह सच्चा असली काम होगा, और उसका खर्च न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजित होगा।

'हरिजन,' ९ जुलाई १९३८

एक प्रयोग

(आशा देवी)

वर्धा शिक्षण योजना का वह पहलू जिसकी सबसे ज्यादा नुकताचीनी की गई है, उसका स्वावलम्बी या उत्पादक पहलू है। अभी तक उद्योग द्वारा शिक्षा के स्वावलम्बी होने या न होने के सम्बन्ध मे जितनी भी बहस हुई है वह दिमागी ही थी क्योंकि हमारे पास वैज्ञानिक ढंग से इकट्ठा किया हुआ ज्ञान न था। जुलाई में वर्धा के विद्यामंदिर ट्रेनिंग स्कूल मे पहिली दो श्रेणियो के बच्चो को तकली पर कताई द्वारा शिक्षण देने का प्रयोग शुरू किया गया था। इस प्रयोग के सम्बन्ध मे सब जानकारी बहुत सावधानी से इकट्ठी की गई है, और उससे हमें अपनी चर्चा और अनुसंधान मे काफी मदद मिल सकती है।

यह कहना जरूरी है कि इस प्रयोग के लिये जो साधन हमें मिले है, वे आदर्श नही है। प्राक्टिसिंग स्कूल के बच्चे स्थानीय म्युनिसिपल स्कूलो के है जिन्हे उद्योग का वातावरण अभी तक नही मिला है। शिक्षक न तो दस्तकारी को

अच्छी तरह जानते है और न नई शिक्षण पद्धति से अच्छी तरह परिचित हैं। वे प्राक्टिसिग स्कूल के पुराने शिक्षक है और उन्होंने तकली पर कताई का और नये शिक्षण की समवाय (Correlated) पद्धति का कुछ ज्ञान जल्दी मे हासिल कर लिया है। असल मे वे बच्चो को पढाकर ही नई पद्धति खुद सीख रहे है। इस तरह यह प्रयोग साधारण ही कहा जा सकता है।

स्कूल मे कोई निश्चित समय-पत्रक नही है, क्योकि शिक्षण दस्तकारी के मिलाते समय उपयोगी अवसर मिलने पर निर्भर है। मामूली तौर पर रोज का काम इस क्रम से होता है —

प्रार्थना, शरीर की सफाई, तकली पर कातना और उससे सम्बद्ध गणित, मातृभाषा और नाटचकला, समाज-शास्त्र और सामूहिक गायन, सामान्य विज्ञान, तकली पर कताई, बागवानी और सामूहिक खेल।

शुरू मे ५।। घटे के कार्यक्रम मे खालिस दस्तकारी के काम के लिये सिर्फ चालिस मिनट (३० मिनट कताई और १० मिनट मे सूत लपेटना और गिनना) दिये जाते थे। धीरे-धीरे अब ८० मिनट दिये जाते है और जैसे जैसे दस्तकारी के लिये बच्चो का शौक बढता जा रहा है यह समय भी बढाया जा रहा है। लेकिन अभी तक ४० मिनट के दो समयो से अधिक सिर्फ दस्तकारी के लिये नहीं दिये गये है।

चूँकि इस लेख में मै सिर्फ उत्पादक पहलू को ही सामने रखना चाहती हूँ इसलिये इस नई शिक्षण पद्धति का बच्चों पर जो सामान्य प्रभाव पडा है, उसका जिक्र नही किया जायगा। नीचे ७ से ८ साल तक के ३० बच्चों के कताई के आँकडे दिये गये है —

	नाम	गति (एक घंटे में तारों की संख्या महीने के अंत में)			उत्पादन					
		जुलाई	अगस्त	सितम्बर	जुलाई		अगस्त		सितम्बर	
					तार	घंटे	तार	घंटे	तार	घंटे
१.	लक्ष्मण कृष्णराव	२०	४०	२४	३१७	१६	२०३	५	१२०	४
२	नीळकंठ तुकाराम	१२	२१	३२	१५२	१२½	३८४	१८	८१७	२८
३.	भाऊराव देवराव	२०	४१	५७	१०१	५	१५०	२३	१२०७	२१
४.	नारायण जऊबा	१६	३६	४३	७०	४½	५८०	१६	१२६४	२९
५	प्यारेलाल	२६	४१	५९	२९२	१०	१९५	४	१३००	१२
६.	रामकैलास	२७	३९	७०	५९८	२१	६६४	१७	११३४	१९
७	उमाशंकर	३५	४५	६५	३२०	९	३१८	७	११०८	१७
८.	पुरुषोत्तम	१९	ab.	३८	१२६	६	ab.	ab	६१६	१६
९.	लक्ष्मण	२०	३८	५५	२१९	१०	७०४	१८	१९०९	२९
१०	भवरीलाल	१६	४०	६१	२०८	१२	५०९	१२	९५५	१५
११	गणपत खाती	ab.	७१	१२९	ab.	ab.	१२९०	१८	३७३७	२९
१२.	सत्यनारायण	१९	२०	२५	३८	२	१९५	९	२००	८
१३.	सीताराम	५८	६९	१६२	११४७	२०	११५०	१८	१६५०	१५½

१४.	पवाल	६५	८३	८४	७३४	१३½	१२७१	१९½	१०२४	१२½
१५.	शंकरलाल	४१	६६	९८	६३०	१७½	९६१	१७	१३२५	१७
१६. -	अवध प्रसाद	४०	५३	६५	५५२	१८	७४३	१९	१०८९	१९
१७.	मोहन प्रसाद	२८	४१	६१	५८९	१९	६५५	१८	९९६	२२
१८.	श्रावण	३६	७६	९५	३५७	१०	८६१	१५	१७०२	२१
१९.	भैय्यालाल	४२	९१	१३५	८४०	२०	१४३५	१८	३०४०	२२¼
२०.	गजानन गणपती	२१	३७	४०	३४२	१९	४९१	१२	११०६	३०
२१.	शरत अन्नासाहेब	२०	३०	२९	२८२	१२	६९४	२०	६९३	३०
२२. -	रामकृष्ण रामचन्द्र	१८	३९	३८	१८०	१०	७९४	१०	१५९३	३२
२३.	शिवाजी मोतीबाबा	१३	३६	४८	१८६	१५	४३१	१२	१३२६	३३
२४.	कृष्णा नागोराव	१८	२१	५५	२६३	१४	३९४	१९	९३८	१५
२५.	विजय शंकरराव	२३	५०	६५	२०९	९	९२५	१८	१२९२	३५
२६	वसंत दत्तात्रय	११	१८	२२	१२३	११	४०३	२५	९७२	३०
२७.	गगाधर बुद्धेराव	४८	५६	७५	५८०	१२	८९९	१८	१९१५	३८
२८.	कृष्णनारायण	३६	५०	६०	५७१	१९	१०१६	१८	२१३६	३९
२९.	वसंत महादेव	२४	४०	५६	२३९	१०	९५७	१७	१२८९	३२
३०.	शारदा शंकरराव	२३	३७	४३	२७७	१२	५३४	१४	११०२	२८

ऊपर दिये आकडों का सार इस प्रकार है:—

	जुलाई	अगस्त	सितम्बर
एक घंटे में कताई की सबसे अधिक गति	५० तार (२०० फीट)	९१ तार	१३३ तार
एक घटे में कताई की सबसे कम गति	१२ तार	२० तार	२४ तार
एक घटे मे कताई की औसत गति	२४ तार	४४ तार	६४ तार
सूत का सबसे अधिक नम्बर (Count)	२० नम्बर	३० नम्बर	३२ नम्बर
सबसे कम नम्बर	४ ,,	४ ,,	५ ,,
औसत नम्बर	९ ,,	१२ ,,	१३ ,,
३० विद्यार्थियो की कक्षा का एक मास मे पूरा उत्पादन	७४ लटी	१६० लटी	२५१ लटी

अगर हम इन आकडो का जाकिर हुसैन कमेटी के विस्तृत अभ्यासक्रम के आकडो से मुकाबला करे तो हम देखेगे कि २।। महीने में ही विद्यार्थियो ने अभ्यासक्रम के ६ महीने के स्टैन्डर्ड तक की योग्यता और उत्पादन शक्ति प्राप्त कर ली ।

इसके बाद बच्चो की कमाई का हिसाब दिया जाता है। मजदूरी महाराष्ट्र चरखा सघ की चालू दरों के अनुसार लगाई गई है :—

	जुलाई	अगस्त	सितम्बर
प्रति मास प्रति कक्षा की कमाई	०–१३–०	२–८–३	४–१–०
एक विद्यार्थी की प्रत्येक मास में औसत कमाई	०–०—५	०–१–१$\frac{3}{4}$	०–२–२
एक महीने मे सबसे कम कमाई	०–०—३	०–०–६	०–१–०
एक महीने में सबसे अधिक कमाई	०–१—८	०–४–१$\frac{1}{2}$	०–५–३

नोट :—हरेक महीने में कताई (लपेटने के साथ) के लिये नीचे लिखे अनुसार समय दिया गया .–जुलाई–१२ घटे, अगस्त–१५ घटे, सितम्बर–२३ घंटे।

यह आकडे हमारी बात को साफ साबित कर देते है और इसलिये उनके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नही है।

'हरिजन', २६ नवम्बर, १९३८

शिक्षा-शास्त्रियों की उलझनें

हिन्दुस्तानी माध्यम

वर्धा के अध्यापक शिक्षण केन्द्र में पचहत्तर प्रतिनिधि, जिन्हे कि विभिन्न प्रान्तीय सरकारो और चन्द देशी राज्यो तथा खानगी व राष्ट्रीय संस्थाओ ने भेजा था, अपना तीन हफ्ते का अभ्यासक्रम पूरा कर चुके थे। अपने-अपने प्रान्तों को वापस जाने के पहिले, वे गाधीजी से मिलना और कुछ बाते कर लेना चाहते थे।

उनमें से अधिकाश हिन्दुस्तानी समझते थे, पर थोडे से ऐसे भी थे जो हिन्दुस्तानी समझने में असमर्थ थे। श्रीमती आशादेवी ने गाधीजी से कहा कि 'आप हिन्दुस्तानी में बोल सकते है।' तदनुसार गाधीजी ने हिन्दुस्तानी मे बोलना शुरू कर दिया, पर कुछ प्रतिनिधियों के चेहरो से जब ऐसा प्रतीत हुआ कि वे एक शब्द भी नही समझ रहे है, तब गांधीजी को लगा कि श्री० आशादेवी जरूरत से ज्यादा आशावाद से काम ले रही है। उन बेचारों में राष्ट्रभाषा समझने की अभी योग्यता नही आई है।

गाधीजी को इस बात की फिक्र थी कि जिस स्कीम को वे लोग अमल में लाने जा रहे हैं उसके सम्बन्ध में अगर कोई उलझनें उनके दिमाग को परेशान

कर रही हो तो उन्हे अच्छी तरह हटा देना चाहिये। उन्होने मज़ाक के लहजे में कहा, 'अल्पसंख्यको के हको के बारे मे चर्चा करना आज एक फैशन-सा बन गया है, इसलिये, हालाकि, जो केवल अग्रेजी ही समझते है, उनकी सख्या शायद उँगलियों पर गिनने लायक है, तो भी मै अग्रेजी मे ही बोलूँगा। मगर मै आपको आगाह कर देता हूँ कि अगली मीटिग मे मै ऐसा नही करूँगा। हिन्दुस्तानी सीख लेने का दढ निश्चय लेकर आपको यहाँ से जाना चाहिये। अगर हम अग्रेजी माध्यम के जरिये ही विचारों का आदान-प्रदान करते रहेगे, तो बुनियादी तालीम के इरादे को, जो हमारे करोडो लोगो की शिक्षा सम्बन्धी जरूरते पूरी करनेवाला समझा जाता है, अमल मे लाना असभव है।

उनकी उलझनें

उक्त प्रतिनिधियों ने गाधीजी से कितने ही प्रश्न किये। पहिले प्रश्न से यह शका प्रगट होती थी कि वर्धा स्कीम भविष्य की कसौटी पर टिक सकेगी या नही, या महज वह एक अस्थायी चीज है। बहुत-से बडे-बडे शिक्षा-शास्त्रियों का तो यह मत है कि एक न एक दिन व्यापक उद्योगीकरण के लिये इन दस्तकारियो को स्थान खाली करना ही होगा। एक ऐसा समाज, जिसने कि वर्धा स्कीम के अनुसार शिक्षा पाई होगी, और जो न्याय, सत्य और अहिसा पर आधार रखता होगा, क्या उद्योगीकरण के प्रबल प्रवाह से बच सकेगा?

"यह कोई व्यावहारिक प्रश्न नही है," गाधीजी ने जवाब दिया--"हमारे तात्कालिक कार्यक्रम पर इसका कोई असर नही पड़ेगा!"

"हमारे सामने प्रश्न यह नही है कि अब से आगे आनेवाले जमाने मे क्या होने जा रहा है; सवाल तो यह है कि हमारे गाँवो में जो करोडो लोग रहते है उनकी सच्ची आवश्यकता इस बुनियादी तालीम की स्कीम से पूरी हो सकेगी या नही। मेरा ख़याल यह नही है कि हिन्दुस्तान में इस हद तक कभी उद्योगीकरण हो जायगा कि गाँव कोई रहेगे ही नही। हिन्दुस्तान का अधिकांश भाग तो हमेशा गाँवों का ही रहेगा।"

"हाल में जो कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव हुआ है, उसके फलस्वरूप अगर कांग्रेस की नीति मे परिवर्तन हुआ, तो बुनियादी तालीम की स्कीम का क्या होगा?" यह दूसरा प्रश्न था।

गाधीजी ने इसका जवाब यह दिया कि "यह तो वेमौके का भय है। कॉग्रेस-नीति मे अगर कोई हेरफेर हुआ तो वर्धा स्कीम पर उसका कोई असर नही पडेगा। उसका असर अगर पडेगा ही तो ऊँची राजनैतिक बातों पर ही पड़ेगा।" सके बाद उन्होने कहा--"आप लोग यहाँ तीन हफ्ते के अभ्यासक्रम का शिक्षण लेने के लिये आये है, जिससे कि आप अपने अपने प्रान्त मे जाकर अपने विद्यार्थियो को वर्धा योजना अनुसार तालीम दे सके। आपको यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि इस शिक्षा-पद्धति से जरूर हमारी आवश्यकताए पूरी होगी।

"उद्योगीकरण की भारी भारी योजनाए भले ही पेश की जाये पर कॉग्रेस का आज हमारे सामने जो ध्येय है, वह देश का उद्योगीकरण नही है। बम्बई मे कॉग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया था उसके अनुसार उसका ध्येय तो ग्राम-उद्योगों का पुनरुद्धार है। मेहनत से तैयार की हुई उद्योगीकरण की किसी स्कीम के जरिये आप लोग देश की जाग्रति नही कर सकते। कोई भी स्कीम बनाते समय हमे अपने करोडो किसानो को ध्यान मे रखना होगा। इन स्कीमो से उनकी आमदनी मे एक पाई की भी वृद्धि होने की नही; जब कि चर्खा सघ और ग्राम-उद्योग सघ एक साल के ही अर्से मे उनकी जेबों में लाखो रुपया पहुँचा देंगे। वर्किंग कमेटी या मंत्रिमडलो मे चाहे जो परिवर्तन हो, मुझे तो ज़ाती तौर से, कॉग्रेस की रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिये कोई खतरा मालूम नही होता। हालांकि इन प्रवृत्तियो की शुरूआत की तो कॉग्रेस ने ही थी, पर एक लम्बे अर्से से वे अपना स्वतत्र अस्तित्व बनाये हुए है, और अपनी उपयुक्तता उन्होंने पूरी तरह साबित कर दी है। बुनियादी तालीम इनकी एक शाखा है। शिक्षा-मंत्री भले ही बदल जायें, पर यह तो रहेगी ही। इसलिये जो लोग बुनियादी तालीम में दिलचस्पी रखते है, उन्हे कॉग्रेस की राजनीति के बारे में परेशान होने की ज़रूरत नहीं। शिक्षा की इस नई योजना में कोई अपने गुण होंगे तो वह जीवित रहेगी, न होंगे, तो आप ही खत्म हो जायगी। लेकिन इन प्रश्नों से मुझे सन्तोष नहीं होगा।

इनका बुनियादी तालीम की स्कीम से कोई सीधा सम्बन्ध नही है। ये प्रश्न हमें कुछ आगे नही ले जाते।"

मूल सिद्धान्त

एक मित्र ने पूछा—"क्या वर्धा शिक्षण योजना का यही मूल सिद्धान्त माना जाय कि जो चीज तकली से सम्बद्ध न की जा सके वह विद्यार्थियो को हरगिज न बतानी चाहिये।" गाधीजी ने कहा, "यह तो मेरी निन्दा है। यह सच है कि मेरी राय मे सब शिक्षण इसी बुनियादी हस्तकला से सम्बद्ध होना चाहिये। जब आप किसी ७ साल या १० साल के बच्चे को किसी उद्योग द्वारा शिक्षण दें तो शुरू मे आपको वे विषय अलग रखने होगे जो उद्योग द्वारा नही सिखलाये जा सकते। इस प्रकार धीरे-धीरे आप उद्योग से उन विषयो का सम्बन्ध जिनको आपने शुरू मे छोड रक्खा था, ढूढ निकालेगे। अगर आप यही तरीका अखत्यार करेगे तो आपकी और विद्यार्थियो की शक्ति का बचाव होगा। फिलहाल हमारे पास न तो किताबे है और न पिछला अनुभव। इसलिये हमको सावधानी से ही अपना कदम बढाना होगा। असल बात तो यह है कि शिक्षक का दमाग आशा से भरा होना चाहिये। अगर आप देखे कि कोई विषय दस्तकारी के जरिये नही सिखलाया जा सकता तो नाराज और निराश न हों। अब उस विषय को छोडकर आगे बढे। शायद दूसरा शिक्षक आपको ठीक रास्ता दिखला सके। जब आप सब मिलकर अपना अनुभव एक दूसरे को बतलायेगे तो बाद मे पुस्तके भी तैयार हो सकेगी और आपके पीछे आनेवाले शिक्षको का काम बहुत आसान हो जायगा।

"हमारी शिक्षा मे क्रान्ति होने की आवश्यकता है। दिमाग को हाथो द्वारा शिक्षित करना चाहिये। अगर मै कवि होता तो पाच उंगलियो मे जो शिक्षण शक्ति है उसका गौरव गाता। आप ऐसा क्यो सोचते है कि दिमाग ही सब कुछ है और हाथ, पैरो मे कुछ भी शक्ति नही है। जो लोग अपने हाथो को शिक्षित नही करते और केवल दिमागी शिक्षा ग्रहण करते है, उनके जीवन म 'सगीत' नही होता। उनकी सब

शक्तिया विकसित नही हो पाती। केवल पुस्तकीय ज्ञान द्वारा बच्चो का मन एकाग्र नही हो सकता । शब्द सुनते–सुनते बच्चे थक जाते हैं और उनका दिमाग इधर–उधर दौडने लगता है। उनके हाथ, आख और कान अपना-अपना काम ठीक तौर से नही कर पाते। वह शिक्षा जो बच्चो को अच्छे और बुरे,का अन्तर नही बता सकती, शिक्षा के नाम से पुकारे जाने लायक नही है।"

हाथों द्वारा बुद्धि का विकास

श्रीमती आशादेवी ने गाधीजी से प्रार्थना की कि वे इस बात को समझायें कि हाथो द्वारा बुद्धि का विकास किस तरह हो सकता है। गाधीजी ने कहा, "पुरानी रीति यह थी, कि स्कूलो के साधारण अभ्यास-क्रम मे किसी दस्तकारी को भी जोड दिया जाता था। उद्योग और शिक्षा मे कोई सम्बन्ध न था। मेरे ख्याल से यह एक भारी भूल थी। शिक्षक को उद्योग सिखाना चाहिये और उस उद्योग के सहारे विद्यार्थियों को विभिन्न विषयो का ज्ञान देना चाहिये। जब तक मैं गणित न जानूँ तब तक मै यह नही बता सकूँगा कि मैंने तकली पर अमुक समय मे कितने तार काते है और सूत का क्या नम्बर है। यह बतलाने के लिये मुझे जोड़, बाकी, गुणा और भाग क्रियाए भी मालूम होना चाहिये। कठिन हिसाब हल करने के लिये मुझे कुछ चिह्नोका इस्तेमाल करना पडेगा और इस तरह मे बीजगणित भी समझ लूगा मेरा आग्रह है कि बीज-गणित में रोमन अक्षरों के बजाय हिन्दुस्तानी अक्षर ही इस्तेमाल किये जाने चाहिये।

"अब रेखागणित को लीजिये। तकली के कुडल से अच्छा उदाहरण वृत्त (Circle) को समझाने के लिये और क्या होगा? मैं यूक्लिड का नाम लिये बिना ही बच्चो को गोलाकार के सम्बन्ध मे सब ज्ञान दे ूंगा।

"आप पूछेंगे कि मै बच्चे को भूगोल और इतिहास कताई द्वारा किस तरह सिखलाऊगा। कुछ समय पहिले मैंने एक किताब देखी थी जिसका नाम था "कपास-मनुष्य जाति की कहानी" ('Cotton-The Story of Mankind") उस किताब ने मुझे रोमाञ्चित कर दिया सके प्रारंभिक मे पुराने ज़माने का इतिहास था और यह बतलाया गया था कि, शुरू मे कपास कहा और किस तरह

उगाई गई थी; उसका विकास किस तरह हुआ और जुदा जुदा देशो के बीच में उसका व्यापार किस तरह हुआ करता था। जब मै बच्चे को इन देशो के नाम बतलाता तो स्वभावत. उन देशो के इतिहास और भूगोल के सबध मे भी कुछ रोचक बाते बता देता। उन्हे बतलाता कि किन राजाओ के जमाने मे यह व्यापार चलता था। बच्चो को यह भी समझा देता कि कुछ देशो मे कपास और कुछ देशों मे कपास का बना कपडा बाहर से क्यो मगाया जाता है। प्रत्येक देश कपास को उत्पन्न क्यो नही कर सकता? इस प्रश्न को हल करने मे मै अर्थशास्त्र और कृषिशास्त्र का साधारण ज्ञान दे सकता हूँ। मै बच्चो को यह भी बताऊगा कि कपास की कौन-कौनसी किस्मे होती है, वे किस तरह की भूमि में उगती है, किस तरह उगाई जाती है और किन किन देशो मे मिलती है। तकली पर सूत कातते कातते मै विद्यार्थियो को ईस्ट इडिया कपनी के जमाने की झलक दे दूगा। उनको बतलाऊंगा कि अंग्रेज हिन्दुस्तान मे क्यो आये, उन्होने हमारी कताई की कला को किस तरह उजाड दिया, और तिजारत के सहारे हिन्दुस्तान पर धीरे-धीरे किस-किस तरह राजनैतिक कब्जा भी करने की कोशिश की। उन्होने मुगल और मरहटा राज्यो को धीरे-धीरे किस तरह मिट्टी मे मिला दिया और अग्रेजी राज्य स्थापित किया। बाद मे हिन्दुस्तान के लोगो मे किस तरह जाग्रति हुई। इस सिलसिले मे कॉंग्रेस का इतिहास भी सक्षेप मे और रोचक ढँग से बतलाया जा सकता है। इस तरह हम इस नये शिक्षण के जरिये बच्चा को बहुत-सी बाते बतला सकते है। नई पद्धति द्वारा बच्चे हरएक बात जल्द समझ लेगे और उनके दिमाग पर भी अनावश्यक जोर न पडेगा।

इसी बात को मै थोडे और विस्तार से कह देना चाहता हूँ। जिस तरह एक शास्त्र को अच्छी तरह समझने के लिये हमे और भी शास्त्रो का ज्ञान हासिल करना पड़ता है, उसी तरह अगर हम 'तकली योग' के विशेषज्ञ बनना चाहते है तो हमे और बहुतसे शास्त्रो का ज्ञान अनायास ही मिल जावेगा। अगर मै तकली की हरेक चीज पर ध्यान दू और उसके उपयोग समझने की कोशिश करूं तो मुझे विज्ञान का ज्ञान सरल रीति से मिल जावेगा। मै सोचूगा कि तकली का कुंडल पीतल का और उसका तकुआ लोहे का क्यो है। मै यह भी सोचूगा कि कुंडल का अमुक व्यास ही क्यो है। उसको छोटा बड़ा करने से क्या असर होगा। इन सब

प्रश्नो को हल करके मैं बच्चो के सामने भी पेश करूंगा। जब बच्चे इन बातो को सोचने और समझने की कोशिश करेंगे तो वे यत्र शास्त्र (Engineering) में भी प्रवेश कर सकेगे। इस प्रकार हमारे लिये तकली कामधेनु बन सकती है। उसके द्वारा हमको अनंत ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अगर कोई सीमा हो सकती है तो आपकी शक्ति और श्रद्धा की ही होगी।

मैं कताई की ही मिसाल इसलिये देता हूँ कि शास्त्र मुझे मालूम है। अगर मैं बढ़ई होता तो अपने बच्चे को यही सब बाते सुतारी द्वारा बतला सकता। कार्ड बोर्ड द्वारा भी यह सब ज्ञान दिया जा सकता है।

इस नई शिक्षा पद्धति को सफल बनाने के लिये हमें ऐसे शिक्षकों की जरूरत है जो प्रतिभाशाली हो और सच्चे उत्साह से भरे हों। उनको दिनरात यह सोचते रहना होगा कि वे अमुक ज्ञान उद्योग द्वारा किस तरह दें। यह नया शिक्षा-शास्त्र मोटी मोटी पुरानी किताबें पढकर प्राप्त न हो सकेगा। शिक्षक को अपनी निरीक्षण शक्ति बढानी होगी और अधिक चितनशील बनना पड़ेगा। आपको अपनी वाणी, दिमाग, और हस्तकला ही का सहारा लेना होगा। शिक्षणशास्त्र में यह एक क्रान्ति होगी। अब तक आप लोग इन्स्पेक्टरो की रिपोर्ट के अनुसार ही चले हैं ताकि इन्सपेक्टर आपके काम से खुश हो और कापको अधिक वेतन मिल सके। लेकिन नये शिक्षक को अब इन बातों की चिता न करनी होगी। वह कहेगा, ' अगर मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर विद्यार्थियो की शक्तियो का विकास किया है तो यह मेरे लिये काफी है और मेरा कर्त्तव्य पूरा हुआ।"

शिक्षकों की ट्रेनिंग

किसी ने सवाल पूछा, "क्या यह अच्छा न होगा कि शिक्षक को पहिले हस्तकला मे निपुण करा दिया जाय और फिर उद्योग द्वारा शिक्षण देने की नई पद्धति को अच्छी तरह समझा दिया जाय? फिलहाल तो उनसे आशा की जाती है कि वे अपने आपको ७ साल के विद्यार्थी मानकर ही चलें और उद्योग द्वारा छोटे बच्चों की तरह ज्ञान हासिल करे। किन्तु इस तरीके से तो हमें नये शिक्षण शास्त्र को पूरी तौर से समझने में बहुत समय लग जायगा।"

गाधीजी—"नही, बहुत समय न लगेगा। मान लीजिये कि जो शिक्षक मेरे पास सीखने के लिये आता है उसको गणित, इतिहास तथा अन्य विषयो का साधारण ज्ञान है। मै उसको कार्ड-बोर्ड के सन्दूक बनाने या कातने के लिये कहूँगा। जब वह अपना काम कर रहा होगा तो मै उसको समझा दूगा कि अमुक उद्योग द्वारा वह गणित, इतिहास और भूगोल का ज्ञान किस तरह हासिल कर सकता था। इस तरह वह ज्ञान और उद्योग के बीच मे सम्बन्ध स्थापित करना सीखेगा। यह सीखने मे उसको ज्यादा समय न लगना चाहिये। अब दूसरा उदाहरण लीजिये। मान लीजिये कि मैं अपने सात साल के बच्चे के साथ एक बुनियादी पाठशाला में जाऊ। हम दोनो कताई सीखेगे और मैं अपना पुराना ज्ञान कताई से सम्बद्ध भी कर लूँगा। बच्चे के लिये सभी चीजे नई होगी। ७० साल के पिता के लिये कुछ हफ्तो से ज्यादा समय न लगना चाहिये। इस तरह अगर शिक्षक मे ७ साल के बच्चे की तरह उत्सुकता और ग्रहण शक्ति पैदा न हुई तो वह सिर्फ यत्र की तरह कताई करेगा और नई पद्धति को न समझ सकेगा।"

प्रश्न— "एक विद्यार्थी जिसने कि मेट्रिक परीक्षा पास की है, अगर चाहे तो कालेज में पढ सकता है। क्या एक बच्चा बुनियादी शिक्षाक्रम को पूरा करके कालेज में पढने योग्य होगा?"

उत्तर— "बुनियादी शिक्षाक्रम को पूरा करनेवाला विद्यार्थी मामूली मेट्रिकुलेशन पास विद्यार्थी से अच्छा रहेगा, क्योकि उसकी शक्तियॉ अधिक विकसित होगी। जब वह कालेज में जायगा तो मेट्रिकुलेट की तरह हताश न होगा।"

प्रश्न— "बुनियादी स्कूलो मे ७ साल से कम उम्र के विद्यार्थी भरती न किये जायेंगे। यह उम्र शारीरिक होगी या मानसिक?"

उत्तर— "मामूली तौर से ७ साल की उम्र के बच्चे ही भरती किये जायेगे किन्तु कुछ विद्यार्थी कम या ज्यादा उम्र के भी होगे। हमे जिस्मी और दिमागी दोनों ही उम्रो का ख्याल रखना होगा। एक बच्चा ७ साल की

उम्र मे ही एक उद्योग के सीखने लायक हो सकता है। दूसरा शायद इस लायक न हो। इसलिये, हम कोई सख्त नियम नहीं बना सकते। सभी बाते सोचनी होंगी।"

गाधीजी कहने लगे, "आपके प्रश्नों से मालूम होता है कि आपके मन में शकाए है। यह ठीक नही है। आपको तो पूरा यकीन होना चाहिये। अगर आपको मेरी तरह यह पक्का विश्वास हो कि वर्धा-शिक्षण-योजना ही हमारे देश के करोडो बच्चो के लिये उपयोगी है तो आप अपने काम मे सफल होगे। अगर आप मे यह विश्वास नही है तो यह आपको ट्रेनिंग देनेवाले लोगो की गलती है। उनमे कम से कम इतनी तो योग्यता होनी चाहिये कि वे आप में यकीन पैदा कर सके।"

प्रश्न—— "बुनियादी शिक्षा गावो के लिये तैयार की गई है। क्या शहरवालों के लिये कोई दूसरा मार्ग नही है? क्या वे लकीर ही पीटते रहे?"

उत्तर—— "यह सवाल अच्छा है। लेकिन मै इसका जवाब 'हरिजन' के लेखों में पहिले दे चुका हूँ। हमारे सामने अभी बहुत काम पडा है। अगर हम फिलहाल सात लाख गावो की तालीम का मसला हल कर सके तो काफी होगा। कुछ शिक्षा-शास्त्री शहरो के बारे मे सोच ही रहे हैं। लेकिन अगर हम भी गावो के साथ-साथ शहरो का ख्याल करने लगे तो हमारी ताक़त बर्बाद हो जायगी।"

प्रश्न—— "मान लीजिये कि एक ही गाव मे तीन बुनियादी स्कूल हों और हरएक मे अलग अलग दस्तकारी के मार्फत तालीम दी जाती है। एक बच्चा फिर कौनसे स्कूल मे जाय?"

उत्तर—— "हमारे बहुत से गाव इतने छोटे है कि वहाँ एक से ज्यादा स्कूल चल ही नही सकता। लेकिन एक बडे गाँव मे एक से ज्यादा स्कूल हो सकते है। ऐसी हालत मे दोनो स्कूलो में एक ही दस्तकारी सिखाई जानी चाहिये। लेकिन मै कोई सख्त नियम नही बना देना चाहता। तजुर्बे से ही हम सीख सकेगे। हमे यह जाँच करनी होगी कि कौनसा हुनर ज्यादा लोकप्रिय है और कौनसे हुनर की मार्फत हम बच्चो की शक्तियों को बढ़ा

सकते है। असली मतलब यही है कि चाहे कोओी-सी भी दस्तकारी हो, उसके द्वारा बच्चे की सब शक्तियो का समान विकास होना चाहिये। वह हुनर गाव का हो और कुछ फायदे का भी होना चाहिये।"

प्रश्न—"अगर किसी बच्चे को आगे जाकर दूसरा ही धधा करना हो तो वह सात साल तक कताओी का ही धधा क्यो सीखे?"

उत्तर—"इस सवाल से मालूम होता है कि आप नई शिक्षा-पद्धति बिलकुल नही समझे है। बुनियादी स्कूलो मे बच्चे सिर्फ एक दस्तकारी सीखने नही जाते। वे स्कूलो मे प्रारभिक शिक्षा के लिये और दस्तकारी द्वारा अपने दिमाग की तरक्की के लिये जाते है। मै दावा करता हूँ कि एक बच्चा जो इस नई तालीम के स्कूल मे ७ साल तक पढ चुका है, आगे जाकर सात साल तक साधारण शिक्षण पाये हुये दूसरे लडको से किसी भी धधे मे ज्यादा कामयाब होगा, चाहे वह लेन-देन का काम करे या तिजारत का। बुनियादी तालीम पाये हुए लड़के की सब शक्तिया विकसित हो जाती है। और वह फिर किसी भी काम को कुशलता से कर सकता है। अगर आपको मै आज यह अच्छी तरह समझा सकू कि बुनियादी तालीम थोडी साहित्यिक और थोडी औद्योगिक शिक्षा नही है, तो मुझे सन्तोष होगा। यह नई तालीम दस्तकारी द्वारा सम्पूर्ण शिक्षण है।"

प्रश्न—"क्या यह ठीक न होगा कि हरएक स्कूल मे एक से ज्यादा हुनर सिखलाये जॉय? बच्चे बहुत दिनो तक एक ही तरह का काम करते करते शायद ऊब जायगे।"

उत्तर—"अगर मै देखू कि एक महीने की कताई के बाद ही बच्चे शिक्षक से ऊब गये है तो मै उस शिक्षक को बरखास्त कर दूगा। जिस तरह एक ही बाजे पर तरह तरह के राग बजाये जा सकते है उसी तरह कताई और उसके द्वारा तालीम देने मे भी विविधता और नयापन हो सकता है। एक हुनर के बाद दूसरा हुनर बदलते जाने मे बच्चा एक बन्दर की तरह हो जाता है जो एक टहनी पर कूदता रहता है और जिसका घर कही भी नही है। मै आपको यह भी बता चुका हूँ कि कताई को शास्त्रीय ढग से

सिखाने मे कताई के अलावा बहुत सी बातें भी सिखलाई जा सकती है। मिसाल के लिये बच्चा धीरे-धीरे अपनी तकली और अटेरन खुद बनाना सीख सकता है। इसलिये अगर शिक्षक दस्तकारी को वैज्ञानिक ढंग से सिखलायेगा तो वह नये-नये ढग से बच्चो को शिक्षा दे सकेगा, और विद्यार्थियो की सब ताकतो की तरक्की करने मे कामयाब होगा।"

'हरिजन', २५ फरवरी, १९३९

बुनियादी तालीम की योजना और धार्मिक शिक्षण

जून सन् १९३८ मे हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा विभिन्न कांग्रेस प्रान्तों के शिक्षा-विभाग के कार्यकर्ताओ को वर्धा शिक्षण योजना समझाने के लिये एक वर्ग चलाया गया था। इन कार्यकर्त्ताओं को गाधीजी से सेगाँव में दो बार मिलने का मौका मिला, और उन्होने अपनी कठिनाइयां और शंकाएं महात्माजी के सामने पेश की।

सबसे बड़ी समस्या जो गाधीजी के सामने पेश की गई वह वर्धा योजना मे धार्मिक शिक्षण के स्थान के सम्बन्ध मे थी। महात्माजी ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया, "हमने वर्धा शिक्षण योजना में धार्मिक शिक्षा को इसलिये स्थान नही दिया है कि आजकल जिस प्रकार धर्म सिखलाये और अमल में लाये जाते है, उससे एकता के बजाय झगड़ा ही पैदा होता है। किन्तु मेरी पक्की राय है कि वे तत्त्व जो सब धर्मों मे समान है हरएक बच्चे को सिखलाये जाने चाहियें। ये तत्त्व शब्दो या पुस्तको द्वारा नही सिखलाये जा सकते। इन तत्त्वों को बच्चे अपने गुरु के दैनिक जीवन द्वारा ही सीख सकते हैं। अगर शिक्षक खुद सत्य और

न्याय के आधार पर अपनी जिदगी बसर करता है तो बच्चे यह आसानी से सीख सकेगे कि सत्य और न्याय सभी धर्मों के आधार है।"

जब महात्माजी से यह पूछा गया कि क्या ७ और १४ वर्ष के बीच के बच्चो को सब धर्मों के लिये एकसा आदर रखना सिखलाया जा सकता है, महात्माजी ने उत्तर दिया, "हा, मेरा ऐसा ख्याल है। यह बात कि सब धर्मों के मूल तत्त्व एक ही है और इसलिये हमको एक दूसरे के धर्म के लिये आदर और प्रेम होना चाहिये, एक बहुत स्पष्ट सत्य है। उसको ७ साल के बच्चे आसानी से समझकर अमल मे ला सकते है। लेकिन असल बात तो यह है कि शिक्षक को स्वय यह श्रद्धा रखनी चाहिये।

सेगाँव–पद्धति

१. पूज्य गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा की योजना को इस लेख में 'सेगांव-पद्धति' कहा गया है।

२. यह योजना बताती है कि एक बालक को आगे चलकर मनुष्य-परिवार में एक जिम्मेवार कुटुम्बीजन का स्थान लेने लायक बनाने के लिए हम किस प्रकार अहिसा का प्रयोग कर सकते है।

३. इस योजना के सम्बन्ध मे व्यापक रूप से यह दावा किया गया है कि यदि हमे मानव समाज मे खूनी यानी लडाकू वृत्ति के स्थान पर शान्ति-स्थापक वृत्ति निर्माण करनी है, तो आवश्यक फेरफारो के साथ यह तमाम देशो मे और सभी जातियो में काम दे सकती है। हिन्दुस्तान के लिए तो आज यही एक उपयुक्त पद्धति है।

४ इस पद्धति का ध्येय यह है कि बच्चे के अन्दर भले-बुरे का ख़याल पैदा होते ही उसे सामाजिक जीवन के कर्तव्यो मे भाग लेना शुरू करा देना चाहिए।

५ इस पद्धति का मध्यबिन्दु होगा, कोई उत्पादक पेशा। आमतौर पर हर किस्म की शिक्षा इस उद्योग के जरिये और इसके साथ गूँथ दी जानी चाहिये। उदाहरणार्थ इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र एव साहित्य आदि सब विषयो की शिक्षा इस उद्योग के साथ ग्रथित करके साथ-साथ दी जानी चाहिए। इन विषयो की अन्य बाते छोडी नही जायगी। पर ग्रथित शिक्षा पर अधिक जोर दिया जायेगा।

६ उद्योग भी शिक्षा का केवल साधन या वाहन नही होगा। बल्कि जिस हद तक वह मानव जीवन मे अनिवार्यत आवश्यक है, उस हदतक वह हमारी शिक्षा का साध्य भी होगा। अर्थात् इस शिक्षा का यह भी एक ध्येय होगा कि इसके द्वारा हर तरह के शरीरश्रम के प्रति, चाहे वह भगी का ही काम क्यो न हो, बालक मे आदर-भाव उत्पन्न हो। और, उसमें एक ऐसी कर्त्तव्यनिष्ठा उत्पन्न हो कि उसे अपनी रोजी भी ईमानदारी के साथ शरीरश्रम द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिए।

७ इस पद्धति के अनुसार पढानेवाले शिक्षक का लक्ष्य यह होगा कि विद्यार्थी जो भी उद्योग सीखे, उसीके जरिये उसकी तमाम शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ प्रकट हो।

८. इसमे समाज-शास्त्र तथा आरोग्य-शास्त्र केवल वर्ग-शिक्षण के विषयों के रूप मे ही न पढ़ाये जायें, बल्कि भिन्न-भिन्न रीति से मूक प्राणियो सहित सारे गाँव की सेवा करने के लिए सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यक्रम बनाकर, उनके द्वारा इन विषयों की प्रत्यक्ष शिक्षा दी जाय। इस नवीन विद्यालय की हस्ती एक दीप की तरह हो, जो समाज पर चारो तरफ से सस्कृति का प्रकाश फैलाता रहे।

९. संक्षेप मे कहे, तो हाथ और ज्ञानेन्द्रियो द्वारा यह पद्धति व्यक्ति की बुद्धि और हृदय को सुसंस्कृत करे और विद्यालय के जरिये उसे समाज तथा परमात्मा तक पहुँचाये।

१० शाला के सामुदायिक जीवन मे रहकर रोज तीन या चार घटे तक सह परिश्रम करना लड़के-लडकियो के लिये आरोग्यदायक और उत्तम रीति से शिक्षाप्रद भी है। "मनुष्य चाहे किसी भी श्रेणी का हो, विज्ञान और उद्योग, दोनो के विकास के लिये और सारे समाज के सामूहिक लाभ की दृष्टि से भी उसे ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वह विज्ञान की पूरी शिक्षा के साथ-साथ दस्तकारी की शिक्षा को जोड सके।" (क्रोपाटकिन)

११ मौजूदा शिक्षा-पद्धति मे तो अधिकाश विद्यार्थी अपनी कॉलेज की पढाई समाप्त कर लेने पर भी यह निश्चय नही कर पाते कि आगे वे क्या काम करेगे ? हम अकसर देखते है कि ऐसे बहुत से लडके और लडकियाँ, जिनके घर की स्थिति बहुत ज्यादा खराब नही होती, प्राथमिक शाला से माध्यमिक शालाओ में और वहाँ से कॉलेजो मे भारी खर्च उठाकर जाते रहते है। इसका कारण यह नही कहा जा सकता कि वे इन विद्यालयो मे सिर्फ उन शुभ सस्कारो को पाते है, जिनका कि ये सस्थाये दावा करती है। वास्तव मे तो वे इसलिये पढते चले जाते है कि उन्हे कुछ सूझता ही नही कि इसके अलावा वे और क्या कर सकते है। जीविका कमाने के लिये किसी उपयुक्त धधे के चुनाव की घडी को, जहाँ तक बन पडता है वे आगे ठेलते जाते है, और इस तरह एक के बाद एक इम्तिहानो में बैठते चले जाते है। जिस स्त्री अथवा पुरुष को अपने जीवन के प्रारम्भिक बीस-पचीस साल इस तरह निरुद्देश्य बिताने पडते है, उसके अन्दर दीर्घसूत्रता, सशयवृत्ति अनिश्चितता और अपने-आप किसी निर्णय पर पहुँचने की अक्षमता, आये बगैर रह ही नही सकती। सेगॉव पद्धति का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक बालक या बालिका को वह जल्दी-से-जल्दी इस बात का निर्णय करा दे कि उसे अपने भावी जीवन मे कौन-सा व्यवसाय करना होगा, उसे किसी एक धन्धे की कम-से-कम इतनी तालीम भी जरूर दे दे, जिससे वह जीवन के समुचित धारण-पोषण के लिये आवश्यक न्यूनतम कमाई अवश्य कर सके।

१२. साक्षरता को यानी लेखन-वाचन द्वारा अनेक विषयो की जानकारी की तथा तार्किक अथवा ऐसी ही अन्य चर्चाओ को समझने की शक्ति को इस सेगॉव-पद्धति मे न तो ज्ञान माना गया है और न ज्ञान का साधन ही। बल्कि, इसमे तो उसे ज्ञान अथवा अलकृत अज्ञान को प्रकट करने की साकेतिक

पद्धति-मात्र माना है। इन सकेतो का ज्ञान तो तब उपयोगी और जरूरी हो सकता है, जब ज्ञान की जडे हरी हो। सेगॉव-पद्धति का उद्देश्य यह है कि इन जडो को हरा-भरा रक्खा जाये। इसके साधन है प्रत्यक्ष काम, अवलोकन, अनुभव, प्रयोग और सेवा। इनके बगैर कोरी किताबी पढाई विद्यार्थी के हृदय और बुद्धि के विकास मे विघ्नरूप सिद्ध होती है और उसके शरीर को भी नुकसान पहुँचाती है।

१३ सेगॉव-पद्धति के अनुसार जो पढाई होगी, और उसमे विद्यार्थी को पढाई की बुनियाद के रूप मे जो कुछ सिखाया जायेगा, उसमे नीचे लिखे विषयों का समावेश होना जरूरी है मातृभाषा का अच्छा ज्ञान, मातृभाषा के साहित्य का साधारण परिचय, देश की राष्ट्रभाषा का व्यावहारिक ज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र, आलेखन, सगीत, कवायद, खेल-व्यायाम वगैरा। इन विषयो का साधारण ज्ञान, और किसी एक धन्धे मे इतनी कुशलता कि जो साधारण शक्तिवाले विद्यार्थी को मामूली कमाई करने की शक्ति दे सके; और अगर वह होशियार तथा परिश्रमी भी हो, तो उसे इस लायक बना दे कि वह साहित्यिक अथवा औद्योगिक क्षेत्र में अधिक शिक्षा पाने का पात्र बन जाये। इस 'बुनियादी पढाई' मे नीचे लिखे विषयो का समावेश आवश्यक नही है: अग्रेजी अथवा ऐसे तमाम विषय, व्यवहार मे साधारणतया जिनकी जरूरत नही होती, अथवा बुद्धि के विकास के लिये जो अनिवार्यत: आवश्यक नही होते, या खुद-बखुद अपनी शिक्षा को आगे बढाने की पूर्व तैयारी के रूप मे जिनकी जरूरत नहीं रहती।

१४ 'बुनियादी शिक्षा' का अध्ययन-क्रम सात वर्ष से कम का नही होना चाहिये। हाँ, अगर जरूरत हो, तो समय बढ़ाया जरूर जा सकता है। अगर आगे लिखे अनुसार शालाये स्वालम्बी हो सकी, और विद्यार्थियों के पालको को भी इनसे कुछ लाभ मिल सका, तो बच्चो को अधिक समय तक पढाने मे उनके पालकों को कोई कठिनाई न होगी।

१५ सेगॉव-पद्धति के सम्बन्ध मे राज्य के कुछ कर्त्तव्य तथा जीवन वेतन की कम से कम मर्यादा के विषय में कुछ सिद्धान्त निश्चित कर लिये गये है। वे नीचे दिये जा रहे है।

१६. जो स्त्री या पुरुष मेहनत करने के लिये तैयार हों और जिन्हें सरकार पढ़ने के लिए मजबूर करे, सरकार का कर्त्तव्य है कि वह उन्हे काम दे और काम के बदले मे कम से कम इतना वेतन जरूर दे, जिससे उनका ठीक तरह निर्वाह हो जाये। जिस सरकार मे इतना करने की शक्ति नही है, वह 'राज्य' कहलाने की पात्रता नही रखती।

१७. ऐसा अनुमान किया गया है कि आजकल के बाजार-भावो के अनुसार हिंदुस्तान मे समुचित निर्वाह के लिए 'पूरा काम' करनेवाले आदमी का मेहनताना फी घण्टा एक आने से कम नही पडना चाहिए। 'पूरा काम' यहाँ उतना काम समझा जाये, जितना (तालीम पाया हुआ) एक साधारण आदमी घण्टे भर मे कर सके।

१८ हमारे देश की वर्तमान शासन-पद्धति तथा समाज की रचना भी इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इसलिए हमारे देश की सरकारे 'राज्य' कहलाने की पात्रता नही रखती। इस खामी का कारण चाहे विदेशी सत्ता हो, या खुद हमी हो, इसे दूर तो करना ही पडेगा। सेगाँव-पद्धति का दावा है कि अगर उसपर साहसपूर्वक और सच्चे दिल से अमल किया जाये, तो राज्य मे तथा समाज में आवश्यक फेर-फार करने के साधन और शक्ति वह हमे देगी।

१९ इसके लिए राज्य को कम से कम एक उद्योग को अपनाना होगा; और वह ऐसा होगा, जिसमे वह लगभग असंख्य आदमियों को काम दे सके और फिर भी उसे खुद घाटा न अुठाना पडे।

२०. हिन्दुस्तान के लिये तो हाथ-बुनाई और हाथ-कताअी ही एक ऐसा धन्धा है। इसमे कच्चे माल की, थोडी पूजी से काम चल निकलने की, और अपार मनुष्य-बल आदि की वे सारी स्वाभाविक अनुकूलतायें है, जो इसे देश का खास उद्योग बना देने के लिए आवश्यक है। फिर, इसके पीछे लम्बी परम्परा भी तो है, क्योकि सैकडो वर्ष तक हिन्दुस्तान ही ने ससार को सूत से ढँका है।

२१. यों तो पहले ही कातने की मजदूरी असंतोषकारक थी, पर आगे चल वह कलो के बने माल की प्रतिस्पर्द्धा मे और भी अधिक घट गई। राज्य तथा

जनता को चाहिए कि वे इस प्रतिस्पर्द्धा को मिटा दे। और जबतक वे ऐसा नहीं कर सकते खादी-उद्योग को जिलाने के लिए, प्रतिस्पर्द्धा की किसी प्रकार परवा किये बगैर, वे कातनेवाले को इतनी मजदूरी देना शुरू कर दें, जिससे उसका अच्छी तरह निर्वाह हो सके।

२२ इसी तरह सभी प्रकार की मजदूरी की दर बढाने की जरूरत है, जिससे मजदूरो का धारण-पोषण पूरी तरह हो सके। सरकार को चाहिए कि ऐसा करने की शक्ति वह प्राप्त करे। जनता का भी कर्त्तव्य है कि इस काम मे सरकार की मदद करे, जिससे वह इस लायक बन जाय।

२३ ऊपर बताई हुई अल्पतम मजदूरी बडी उम्र के आदमी के लिए है। सेगाँव-पद्धति की शाला के विद्यार्थी के लिए उसकी दर फी घटा आध आना पडती है।

२४. यदि हम रोजाना काम के तीन घण्टे मान ले, और यह मान ले कि साल मे नौ महीने शाला लगेगी, तो सेगाँव-पद्धति की शाला की कुशलता की कसौटी यह होगी कि सात दर्जों (हर दर्जे मे २५ विद्यार्थी) और लगभग आठ-नौ शिक्षकोवाली शाला की आय इतनी हो जानी चाहिए कि अगर उपयुक्त हिसाब से मजदूरी आँकी जाये, तो उसमे से शिक्षको का वेतन निकल आये। शिक्षक के वेतन कम-से-कम रु० २५) मासिक मान लिया गया है। वह रु० २० मासिक से कम तो किसी हालत मे न होगा।

२५ विद्यार्थियो की कार्यशक्ति, साधन तथा शिक्षा-पद्धति मे इतना सुधार हो जाने चाहिए कि कुशलता की उपर्युक्त कसौटी पर कम-से-कम प्रत्येक शाला खरी उतर सके।

२६. उपर्युक्त दर से शाला के विद्यार्थी की मजदूरी आँकते हुए, और गाँवो में खानगी कारीगरों को आज जो मजदूरी मिलती है, उसका विचार करते हुए, इस बात का कोई भय नही रहता कि खानगी कारीगरों के माल के साथ शालाओ के माल की प्रतिस्पर्द्धा होगी। गाँवो के कारीगरो की मजदूरी की दर के

इस सीमा तक आने मे थोड़ा समय लगेगा, और तबतक तो देहाती कारीगरो की कार्य-शक्ति और साधनो मे भी इतने ही सुधार हो चुके होगे। इसलिए यहाँ प्रति-स्पर्द्धा का भय रखने की जरूरत ही नही।

२७ फिलहाल तो शाला को उपर्युक्त मजदूरी चुकाने का आश्वासन सरकार को दे ही देना चाहिए। कम-से-कम चर्खा सघ तथा ग्रामोद्योग सघ द्वारा मंजूर की गई दर तो जरूर देनी चाहिए। और जबतक विद्यार्थी को फी घटा आध आना मजदूरी नही पड जाती, ये सस्थाये ज्यो-ज्यो अपने यहाँ मजदूरी की दर बढाती जाये, त्यो-त्यो शालाओ की मजदूरी की दर भी बढती जानी चाहिए। इस-पर शायद यह आक्षेप किया जायेगा कि यह तो शाला को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करने की बात हुई। और यह कि इससे, मौजूदा बाजार-भावो को देखते हुए सरकार पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ पड़ेगा। मगर कारीगरों की कार्यशक्ति और साधनो मे भी सुधार के लिए इतनी गुजाइश है कि हम यह आशा रख सकते है कि पदार्थो की अधिक कीमत बढ़ाये बिना भी, पाँच वर्ष के अन्दर शाला मे अथवा खानगी तौर से तालीम पाया हुआ प्रत्येक कारीगर हक के साथ जीवन वेतन की न्यूनतम मर्यादा तक पहुँचने की शक्ति प्राप्त कर लेगा।

२८ यह जो सिद्धान्त कहा गया है कि ऊपर बताये अर्थ में प्रत्येक शाला को स्वाश्रयी हो जाना चाहिए, उसमे केवल आर्थिक दृष्टि ही नही है, बल्कि यह शाला के औद्योगिक विभाग की कुशलता की व्यावहारिक कसौटी के रूप मे रक्खा गया है।

२९. यहाँ केवल खादी-उद्योग द्वारा 'बुनियादी पढाई' की दृष्टि से सेगाँव-पद्धति का सागोपाग विचार किया गया है। इससे कोई यह न समझे कि इसमें हम अन्य उद्योगों को प्रोत्साहन नही देना चाहते। बात यह है कि दूसरे उद्योगो के सम्बन्ध मे योजना बनाने और अनुमान निकालने के लिए अभी हमारे पास आवश्यक सामग्री नही है।

३० सेगाँव-पद्धति के सिद्धान्त आवश्यक फेरफारो के साथ उसके बाद की शिक्षा में भी प्रयुक्त किये जाने चाहिए। हर प्रकार की शिक्षा मे स्वाश्रय को तो

स्थान होना ही चाहिए। उच्च शिक्षा मे सस्था का खर्च या तो विद्यार्थियो की मेहनत से निकल आना चाहिए या फीस से। और अगर फीस न देनी पडती हो। तो विद्यार्थी अपना खर्च शाला मे या बाहर कही मजदूरी करके निकाल ले।

—किशोरलाल मशरूवाला

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम

हिन्दी पुस्तकें

	मूल्य

शिक्षा पर गांधीजी के लेख व विचार

१. शिक्षा मे अहिसक क्रान्ति	१–०–०
२. नई तालीम की मूल कल्पना	०–१–०

बुनियादी शिक्षा सम्मेलनों की रिपोर्ट

३. बुनियादी तालीम के दो साल (जामियानगर)	२–८–०
४ समग्र नई तालीम (सेवाग्राम १९४५)	२–४–०
५. सातवाँ नई तालीम सम्मेलन (सेवाग्राम १९५१)	२–०–०
६. ठहराव तथा निष्कर्ष (उपरोक्त सम्मेलन)	०–६–०
७. बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा (जाकिर हुसेन कमिटी)	१–८–०
८ दस साल का काम (विक्रम १९४७)	२–०–०

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की सालाना रिपोर्ट

९. सात साल का काम (१९४६)	०–८–०
१०. आठ साल का काम (१९४८)	०–८–०

बुनियादी शिक्षा के आम सिद्धांत

११. प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य (शाता बहन और मार्जरी साइक्स)	०-१२-०
१२. बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत	१-१०-०
१३. पूर्व बुनियादी तालीम की योजना और प्रत्यक्ष काम (शाता बहन)	१–४–०

अलग अलग विषयों पर पुस्तकें

१४. मूल्य उद्योग कातना (विनोबा)	मराठी—०-१०-०
	हिन्दी—०-१२-०
१५. ओटना, तुनना व धुनना (सत्यन्)	०-१२-०

		मूल्य
१६.	तांत बनाना (सत्यन्)	०-१२-
१७.	खेती-शिक्षा (भिसे और पटेल)	मराठी—१-०-
		हिन्दी—१-८-
१८.	तकली (कुन्दर दिवान)	उर्दू—२-०-०
१९.	सफाई विज्ञान (श्री धीरेन्द्र मजूमदार)	०-१०-०
२०.	कम्पोस्ट वाली संडास	०-५-०
२१.	कताई शास्त्र (सत्यन्)	३-४-०

पाठ्यक्रम की पुस्तकें

२२.	आठ सालो का सम्पूर्ण शिक्षाक्रम	१-८-०
२३.	शिक्षको की ट्रेनिंग का पाठचक्रम (प्रेस मे)	१-०-०
२४.	पूर्व बुनियादी शिक्षकों की ट्रेनिग का पाठ्यक्रम	०-१०-०
२५.	पूर्व बुनियादी समिति का विवरण	०-४-०

अन्य पुस्तकें

२६.	नई किताब (सचित्र) तीसरे दर्जे के लिये	उर्दू—०-५-०
		हिन्दी—०-१२-०
२७.	भारत की कथा (अभिनय तथा सगीत)	०-८-०
२८.	पद्धति और उसूल (डॉ. जाकिर साहब का भाषण)	०-१-०
२९.	सेवाग्राम में नई तालीम	०-१-०
३०.	प. नेहरूजी का भाषण	०-१-०
३१.	कताई का हिसाब (उर्दू)	०-१०-०
३२.	वस्त्रपूर्णा (कुन्दर दिवाण) मराठी	२-०-०
३३.	कताई प्रवेश (मराठी)	१-८-०
३४.	विद्या और विद्यालय का आदर्श—(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)	०-१-०
३५.	बुनियादी शिक्षा और बाल-हित (मार्जरी साइक्स)	०-१-०
३६.	नई तालीम का आयोजन (काका कालेलकर)	०-१-०